दिसंबर-2022

# अखण्ड ज्योति

धर्म एवं अध्यात्म के तत्त्वज्ञान का वैज्ञानिक विश्लेषण

वर्ष-86 । अंक-12 । ₹-25 प्रति । ₹-300 वार्षिक

'नववर्ष की पूर्व संध्या में नए साल का स्वागत'
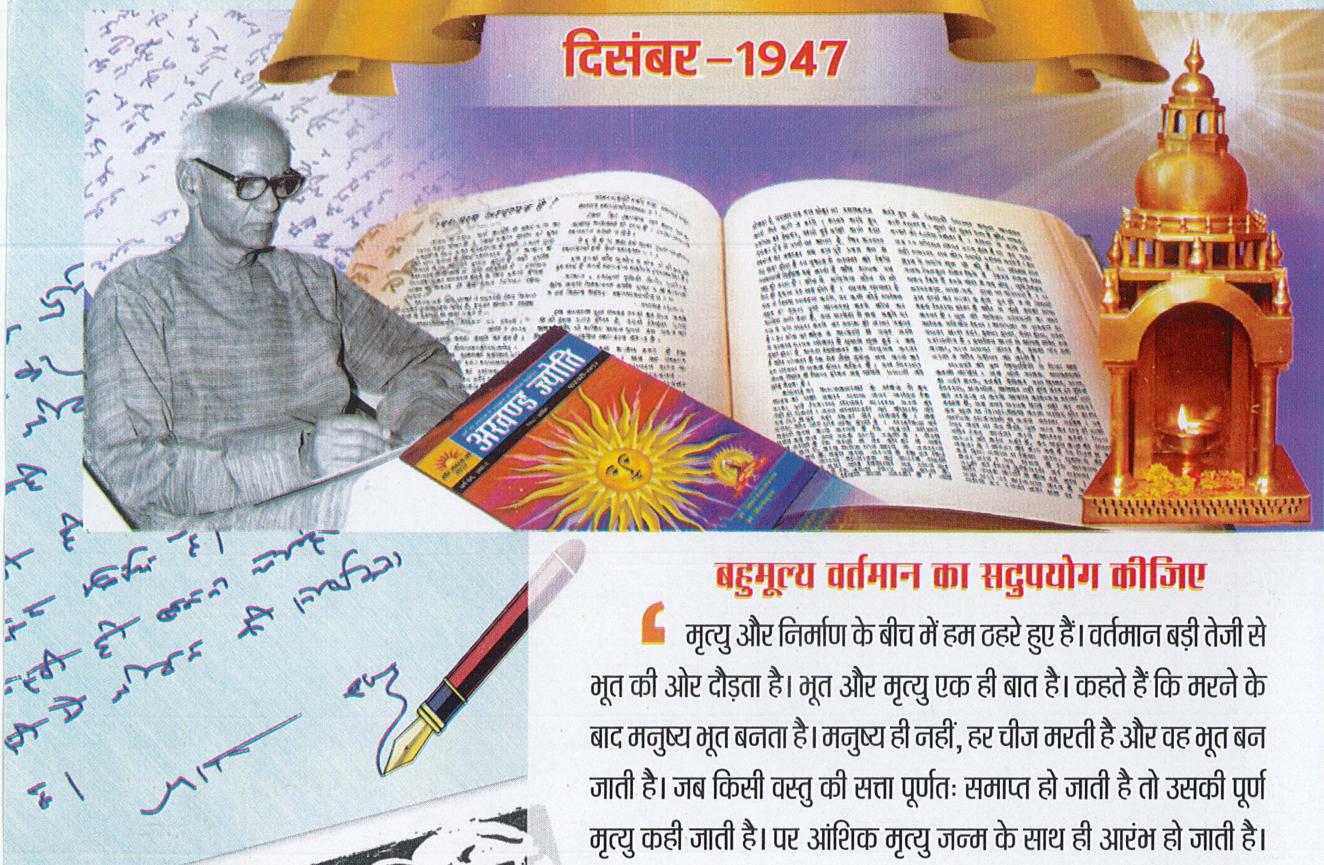
## बहुमूल्य वर्तमान का सदुपयोग कीजिए

"मृत्यु और निर्माण के बीच में हम ठहरे हुए हैं। वर्तमान बड़ी तेजी से भूत की ओर दौड़ता है। भूत और मृत्यु एक ही बात है। कहते हैं कि मरने के बाद मनुष्य भूत बनता है। मनुष्य ही नहीं, हर चीज मरती है और वह भूत बन जाती है। जब किसी वस्तु की सत्ता पूर्णतः समाप्त हो जाती है तो उसकी पूर्ण मृत्यु कही जाती है। पर आंशिक मृत्यु जन्म के साथ ही आरंभ हो जाती है। बालक जन्म के बाद बढ़ता है, विकास करता है, उसकी यह यात्रा मृत्यु की ओर भी है।

संसार की हर वस्तु का—मनुष्य शरीर का भी निर्माण उन्हीं तत्त्वों से हुआ है, जो हर क्षण बदलते हैं। उनका चक्र भूत को पीछे छोड़ता हुआ और भविष्य को पकड़ता हुआ प्रतिक्षण बड़ी तेजी के साथ आगे बढ़ रहा है। विश्व एक पल के लिए भी स्थिर नहीं रहता। अणु-परमाणुओं से लेकर विशालकाय ग्रह पिंड तक अपनी यात्रा अविश्रांत गति से कर रहे हैं।

हमारा जीवन भी हर घड़ी थोड़ा-थोड़ा करके मर रहा है, इस दीपक का तेल शनैः शनैः चुकता चला जा रहा है। भविष्य की ओर हम चल रहे हैं, और वर्तमान को भूत की गोद में पटकते जाते हैं, यह सब देखते हुए भी हम नहीं सोचते कि क्या वर्तमान का कोई सदुपयोग हो सकता है? जो बीत गया सो गया,जो आने वाला है, वह भविष्य के गर्भ में है। वर्तमान हमारे हाथ में है। यदि हम चाहें तो उसका सदुपयोग करके इस नश्वर जीवन में से कुछ अनश्वर लाभ प्राप्त कर सकते हैं।"

— पंडित श्रीराम शर्मा आचार्य

संस्थापक-संरक्षक
**वेदमूर्ति तपोनिष्ठ**
**पं० श्रीराम शर्मा आचार्य**
एवं
**शक्तिस्वरूपा**
**माता भगवती देवी शर्मा**
संपादक
**डॉ० प्रणव पण्ड्या**
कार्यालय
**अखण्ड ज्योति संस्थान**
**बिरला मंदिर के सामने, मथुरा-वृंदावन रोड जयसिंहपुरा, मथुरा ( 281003 )**
**दूरभाष नं० ( 0565 ) 2403940, 2972449 2412272, 2412273**
**मोबाइल नंबर- 9927086291, 7534812036 7534812037, 7534812038 7534812039**
**कृपया इन मोबाइल नंबरों पर एस. एम. एस. न करें।**
**नया ईमेल-**
**akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org**
**प्रातः 10 से सायं 6 तक**

| | | |
|---|---|---|
| वर्ष | : | 86 |
| अंक | : | 12 |
| दिसंबर | : | 2022 |
| मार्गशीर्ष-पौष | : | 2079 |
| प्रकाशन तिथि | : | 01.11.2022 |
| **वार्षिक चंदा** | | |
| भारत में | : | 300/- |
| विदेश में | : | 2800/- |
| **आजीवन ( बीसवर्षीय )** | | |
| **भारत में** | : | 6000/- |


# युग-परिवर्तन

मानवता के इतिहास में कभी-कभी ऐसे समय आते हैं, जिन्हें ऐतिहासिक एवं असाधारण कहकर पुकारा जा सकता है। वर्तमान समय को भी परमपूज्य गुरुदेव ने एक ऐसी ही संज्ञा देते हुए युग-परिवर्तन का समय कहकर पुकारा। युग-परिवर्तन की ये परिस्थितियाँ हर जाग्रत, जीवंत एवं मूर्द्धन्य व्यक्ति के लिए यही पुकार लेकर आई हैं कि उन्हें इस विशिष्ट समय में भगवान महाकाल एवं गुरुसत्ता के सहयोग के लिए तत्पर हो जाने की आवश्यकता है।

भगवान सहयोग के लिए एक युग में एक ही बार पुकारते हैं और किसी बड़े कार्य के लिए नहीं पुकारते, वरन श्रद्धा एवं विश्वास के परीक्षण के लिए पुकारते हैं।

वर्तमान समय में हर जाग्रत आत्मा को भगवान की इस पुकार को ध्यान से सुनने की आवश्यकता है। जो सो रहे हैं उनसे इस समय में कोई अपेक्षा नहीं, परंतु जो जीवंत हैं वे यह महसूस करें कि आज जब समय वीभत्स है, वातावरण विकृत है तो बिना मूर्द्धन्यों के आगे आए इस समय को बदल पाना संभव नहीं। युग-परिवर्तन की परिस्थितियाँ जागने और जगाने की, उठने और उठाने की एवं आगे बढ़ने और दूसरों को आगे बढ़ाने की हैं। ❐

**▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀**

# विषय सूची



## आवरण पृष्ठ परिचय

## नववर्ष की वेला में नए साल का स्वागत

### दिसंबर-2022 व जनवरी-2023 के पर्व-त्योहार

| | | | | | |
|---|---|---|---|---|---|
| शनिवार | 03 दिसंबर | मोक्षदा एकादशी/ गीता जयंती | मंगलवार | 10 जनवरी | संकष्ट चतुर्थी |
| बुधवार | 07 दिसंबर | दत्तात्रेय जयंती | गुरुवार | 12 जनवरी | राष्ट्रीय युवा दिवस |
| सोमवार | 19 दिसंबर | सफला एकादशी | शनिवार | 14 जनवरी | मकर संक्रांति |
| रविवार | 25 दिसंबर | क्रिसमस | बुधवार | 18 जनवरी | षट्तिला एकादशी |
| बुधवार | 28 दिसंबर | सूर्य षष्ठी | शनिवार | 21 जनवरी | मौनी अमावस्या |
| गुरुवार | 29 दिसंबर | गुरु गोविंद सिंह जयंती | गुरुवार | 26 जनवरी | गणतंत्र दिवस/ वसंत पंचमी |
| सोमवार | 02 जनवरी | पुत्रदा एकादशी | शुक्रवार | 27 जनवरी | सूर्य षष्ठी |

**यह पत्रिका आप स्वयं पढ़ें तथा औरों को पढ़ाएँ। कुछ समय के बाद किसी अन्य पात्र को दे दें, ताकि ज्ञान का आलोक जन-जन तक फैलता रहे।** ***—संपादक***

**▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀**

विशिष्ट सामयिक चिंतन

# धर्मतंत्र का जागरण है जरूरी

आज समाज की जो व्यवस्था हमें दिखाई पड़ती है, उसके दो महत्त्वपूर्ण घटक हैं। एक का नाम है—व्यक्ति और दूसरे का नाम है—समाज। समाज सही दिशा में चले, उसकी उन्नति हो-प्रगति हो, उसमें आपराधिक वृत्तियाँ न पनपें, अर्थव्यवस्था सुदृढ़ रहे, सुरक्षा मजबूत हो, देश-समाज सुरक्षित हों, सभी नागरिक सुखी हों, संतुष्ट हों—ये सुनिश्चित करने का कार्य राजतंत्र का है और व्यक्ति सही दिशा में चले, उसका जीवन न्याय, नीति, सदाचार से ओत-प्रोत रहे, उसके व्यक्तित्व में सद्भावनाओं का, सद्गुणों का, सत्कर्मों का वास हो, ये जिम्मेदारी धर्मतंत्र की हो जाती है।

दूसरे शब्दों में कहें तो व्यक्ति के व्यक्तित्व को निखारने की, उसको परिष्कृत करने की, परिमार्जित एवं परिशोधित करने की जिम्मेदारी धर्म की है, आस्था की है, संस्कृति की है, अध्यात्म की है तो वहीं सामाजिक विकास की जिम्मेदारी सरकार की है, प्रशासन की है, राजनीतिक नेतृत्व की है, राजतंत्र की है। भौतिक क्षेत्र, बाह्य क्षेत्र राजनीति का तो वहीं आंतरिक प्रगति, आत्मिक विकास—धर्म का क्षेत्र है।

एक प्रचलन में आया चिंतन यह है कि ये दोनों एकदूसरे के विरोधी हैं; जबकि भारतीय चिंतन में यह बात वर्षों से बड़े गहरे भाव के साथ विद्यमान थी कि इन दोनों का कार्य एकदूसरे का विरोध करना नहीं, वरन एकदूसरे को मजबूती प्रदान करना है। ये दोनों सच्चे अर्थों में एकदूसरे के पूरक हैं और जब तक ये एकदूसरे के सच्चे अर्थों में पूरक रहे, तब तक भारतीय संस्कृति उन्नति की सीढ़ियों पर अग्रसर होती चली गई।

हम कल्पना करके देखें कि यदि इन दोनों धाराओं में परस्पर सहयोग का, सामंजस्य का भाव न होता तो क्या भला चंद्रगुप्त, चाणक्य के इतने बड़े राज्य का नेतृत्व कर पाने की स्थिति में होते? क्या शिवाजी समर्थगुरु रामदास के बिना छत्रपति बन पाते? क्या रघुकुल महर्षि वसिष्ठ के बिना गौरवान्वित हो पाता?

जब तक दोनों—धर्मतंत्र तथा राजतंत्र एकदूसरे के पूरक बने रहे तो इस देश में रंतिदेव, दिलीप, रघु, विक्रमादित्य जैसे राजा राजपद को प्राप्त करते रहे और यह देश—विश्वभर को कल्याण का पथ प्रदर्शित करता रहा। आज कहीं ऐसा होता दिखाई नहीं पड़ता; क्योंकि यह दोनों ही तंत्र एक तरह से अपनी गौरव-गरिमा को लगभग भूल चुके हैं।

यदि गाड़ी के दो पहिए हों और दोनों अलग-अलग दिशा में चलें तो गाड़ी का दुर्घटनाग्रस्त होना सुनिश्चित हो जाता है। यह सृष्टि की आदिकाल से चली आ रही व्यवस्था है कि जिसके लिए जो पथ दिया गया है, यदि वो उसका सही से पालन करे तो कहीं किसी तरह की समस्या के होने की संभावना नहीं है।

यदि हम भारतवर्ष का इतिहास उठाकर देखें तो हम पाएँगे कि यहाँ वर्षों तक सामाजिक विकास और वैयक्तिक उत्कर्ष, समाज की उन्नति और व्यक्ति की प्रगति साथ-साथ होते चले; क्योंकि धर्मतंत्र के ऋषियों ने अपनी भूमिका का निर्वहन

**▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀**

किया और राजतंत्र ने अपनी। भारत के इतिहास में हमें हजारों ऐसे राजाओं के नाम मिल जाएँगे, जिनके हृदय आस्था से ओत-प्रोत थे, जिनका जीवन धर्म की प्रतिमूर्ति था और जिन्होंने अपने कर्त्तव्य का पालन पूर्ण ईमानदारी से किया।

यह उस समय की बात है, जब धर्मतंत्र और राजतंत्र एकदूसरे के पूरक हुआ करते थे। यह स्पष्ट था कि जब धर्म का कार्य करने में कोई रुकावट आएगी तो उसको दूर करने के लिए राजतंत्र आगे आएगा और यदि राजा, राजपद की गरिमा को भूलता दिखाई पड़ेगा तो उस पर नियंत्रण स्थापित करने का कार्य धर्मतंत्र का होगा।

जब ऋषियों के यज्ञ में राक्षसों ने विघ्न पैदा करने का कार्य किया तो रघुकुलनंदन राम वहाँ रक्षा करने के लिए आ खड़े हुए और जब चंद्रगुप्त बहकते दिखे तो उनको सँभालने के लिए चाणक्य तत्पर थे। आज की परिस्थितियाँ भिन्न हैं—दोनों ही स्थानों पर, दोनों ही क्षेत्रों में दिशा व नेतृत्व का स्पष्ट अभाव दिखाई पड़ता है।

यदि भारतवर्ष को, फिर से गौरव शिखर पर संस्कृति की ध्वजा का आरोहण करना है तो हमें धर्मतंत्र को परिष्कृत करना होगा और राजतंत्र को पारदर्शी बनाना होगा। धर्मतंत्र यदि जाग गया तो देश, राष्ट्र, समाज, मानवता, धर्म—सभी की दिशा निर्धारित और नियंत्रित हो जाती है। धर्मतंत्र के जागरण के लिए उन व्यक्तियों का जागरण भी आवश्यक है, जिनके अंतरंग में धर्म का, अध्यात्म का मूल सिद्धांत निवास पाता है।

धर्म का मूल सिद्धांत है—मानवता, दया, करुणा। धर्म वो सिद्धांत है जिसके अनुसार—दुःखी का दुःख दूर होता है और साथ ही पतित व्यक्ति भी सही पथ पर आ जाता है।

आज भारत को यदि पूरे विश्व को दिशा देने की अपनी भवितव्यता को सत्य सिद्ध करना है तो ऐसी धर्म-भावना से ओत-प्रोत व्यक्तियों को जागना पड़ेगा। इस धर्मतंत्र के जागरण से ही भारतीय संस्कृति का जागरण संभव है और भारतीय संस्कृति का जागरण ही दैवी चेतना से अभिपूरित व्यक्तियों का जागरण संभव कर सकता है। आज के समय की एक महत्त्वपूर्ण आवश्यकता इसे कहा जा सकता है। ❑

---

**राजा रात को महल की सुरक्षा-व्यवस्था देखने निकले। देखा कि खजाने के कक्ष में से रोशनी आ रही है। राजा ने जाकर देखा तो वहाँ खजांची बैठे काम कर रहे थे। राजा ने कारण पूछा तो खजांची बोले—"हुजूर! हिसाब लगा रहा हूँ, कुछ भूल हो गई है।"**

**राजा ने पूछा—"कितना कम पड़ गया है खजांची जी?" खजांची ने उत्तर दिया—"महाराज! कम नहीं पड़ा, ज्यादा हो गया है।" राजा बोले—"तो चिंता की क्या बात है? सुबह कर लेना।" खजांची बोले—"नहीं महाराज! पता नहीं, किस गरीब का पैसा हमारे खजाने में आ गया होगा। उसको कष्ट न हो, इसलिए रात में ही हिसाब सही करने बैठ गया।" राजा बोले—"जिस राज्य में आपके जैसे कर्त्तव्यपरायण खजांची हों तो वहाँ की सुरक्षा कभी कम हो नहीं सकती।"**

---

**►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◄**

# जीवन का शीर्षासन है अध्यात्म

जनसामान्य में अध्यात्म के प्रति जिज्ञासा और आकर्षण का होना सहज और स्वाभाविक है, परंतु इसका मार्ग दुष्कर, गूढ़, समय व श्रमसाध्य होने के कारण चाहकर भी हर कोई इस दिशा में आगे बढ़ नहीं पाता। सच्चाई यह है कि अध्यात्म की इच्छा रखने वाले लाखों में से कोई एक ही इस ओर चल पड़ता है और इस ओर चलने वाले लाखों में से भी कोई विरले ही इस मार्ग पर टिक पाते हैं और उनमें भी अध्यात्म की परमसिद्धि को प्राप्त करने वाला युग-युगांतर में कोई एक ही होता है।

इस मार्ग की दुरूहता, यथार्थता और मर्म को जाने-समझे बिना अंधों की भाँति इस ओर कदम बढ़ा देने से सिवाय हानि के, लाभ कुछ भी नहीं होता है। ऐसे अंधेपन और भ्रांति के शिकार लोग ही इस पवित्र मार्ग को कलंकित करते हैं व अन्यों को भी भटकाते देखे जा सकते हैं। आजकल की बाजारवादी लालची दृष्टि भी अध्यात्म के क्षेत्र में संभावना तलाशने को आतुर है। ऐसे में किसी नए जिज्ञासु के लिए इस क्षेत्र में कदम रखने से पहले अनेक तरह की शंकाओं, भ्रांतियों और द्वंद्वों से घिर जाना स्वाभाविक है।

इन सबसे बचने और अन्य को बचाने का एकमात्र उपाय यही है कि अध्यात्म मार्ग पर पहला कदम रखने से पहले इस मार्ग के विषय में सही जानकारी और समझ विकसित कर ली जाए। सर्वप्रथम इस सच्चाई को समझना आवश्यक है कि हम अभी जिस जीवन को जी रहे हैं, वह भौतिक प्रकृति और उसके सिद्धांतों-नियमों के मानकों से आबद्ध है। साधारण जीवन के निर्वाह और उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भौतिक जगत् के मानकों का पालन करना आवश्यक और उपयोगी भी है, परंतु अध्यात्म का क्षेत्र इससे सर्वथा भिन्न है।

भौतिक प्रकृति से भिन्न यह सूक्ष्मप्रकृति का संसार है। अध्यात्म का मार्ग स्थूलजगत् की भौतिक-भोगवादी विधियों से नहीं, वरन आंतरिक जगत् की उस डगर से गुजरता है, जिसका निर्माण स्वयं व्यक्ति अपने त्याग, तप, वैराग्य और समर्पण के बल पर करता है।

यहाँ सूक्ष्मजगत् की अंतर्यात्रा के ज्ञान-विज्ञान से परिचित होना आवश्यक होता है। इस यात्रा में सूक्ष्मप्रकृति के नियम और सिद्धांत कार्य करते हैं, जो कि इस भौतिक संसार के सिद्धांतों से सर्वथा भिन्न हैं। इनको सीखने-समझने और आत्मसात् करने के लिए किसी समर्थ मार्गदर्शक अथवा गुरु की अत्यंत आवश्यकता होती है।

भौतिक संसार का नियम और अनुभव यह है कि जब हम अपने कदम प्रकाश अथवा सूर्य की ओर बढ़ाते हैं तो हमारी परछाईं पीछे छूटती जाती है। प्रकाश की दिशा में यात्रा करने वालों की परछाईं कभी उनके सामने नहीं आती और न ही किसी तरह के भ्रम-भटकाव या बाधा का कारण बनती, परंतु सूक्ष्मप्रकृति के नियम और अनुभव इनसे सर्वथा उलट होते हैं।

जब कोई अध्यात्म के परम प्रकाश की प्राप्ति के उद्देश्य से अपनी अंतर्यात्रा प्रारंभ करता है और

सूक्ष्मप्रकृति में कदम रखता है तो उसकी परछाईं और ज्यादा घनीभूत होकर उसके सामने आ खड़ी होती है। यह परछाईं जन्म-जन्मांतर के कर्म-संस्कार, प्रारब्ध और वृत्तियों के सूक्ष्म और रहस्यात्मक तंतुओं से विनिर्मित होती है। जब तक इन तंतुओं को सुलझाया-हटाया नहीं जाता, तब तक परछाईं सामने से नहीं हटती और इस परछाईं के हटे बिना आत्मसत्ता के धरातल पर अध्यात्मरूपी परमप्रकाश की किरणें कभी अवतरित नहीं हो पाती हैं।

यह बात सच्ची, किंतु अत्यंत मार्मिक है कि स्थूलप्रकृति में प्रकाश की ओर यात्रा हर किसी के लिए संभव है; क्योंकि यहाँ कोई मार्ग की बाधा नहीं है, लेकिन सूक्ष्मप्रकृति में प्रकाश की ओर यात्रा पग-पग पर विपरीतताओं, भ्रमों-भ्रांतियों, रहस्यों और आश्चर्यों से भरी है। परमपूज्य गुरुदेव की बातें—'**उलटे को उलटकर सीधा करना**' अथवा '**अध्यात्म जीवन का शीर्षासन है**'— अध्यात्म मार्ग के इसी तथ्य एवं सत्य को प्रकट करती हैं।

परमपूज्य गुरुदेव से पूर्व भी जिस किसी ने इस अंतर्यात्रा को पूरा कर शिखर को प्राप्त किया है, उन सभी ने अध्यात्म मार्ग की इन बाधाओं को पार किया है—तभी उन्हें पूर्ण सफलता प्राप्त हो सकी है। साथ ही इन आप्त महापुरुषों ने इस यात्रा के मार्ग की चुनौतियों एवं कठिनाइयों के प्रति प्रत्येक अध्यात्म जिज्ञासुओं-पिपासुओं को आगाह भी किया है।

ऋग्वेद के ऋषियों ने '**अँधेरी गुफाओं**' के रूप में इसी ओर संकेत किया है। उपनिषदों में तो इस अध्यात्म यात्रा के सार को एक ही सूत्र में समझा दिया गया है। गीता में उल्लेख है कि '**जीवनरूपी अश्वत्थ की जड़ें ऊपर और शाखाएँ नीचे हैं।**' महायोगी श्रीअरविंद ने भी इन प्रतीकात्मक सूत्रों-उपदेशों पर व्यापक प्रकाश डाला है। उक्त सब बातें कहने का तात्पर्य यही है कि अध्यात्म मार्ग सामान्य जीवन की तुलना में कहीं अधिक कठिन, चुनौतीपूर्ण और दुर्लभ है। इसकी संपूर्ण यात्रा सूक्ष्मप्रकृति में जीवन के भीतर ही है।

बाह्य जगत् की कोई भी कल्पनाएँ, विचार, अनुमान, अनुभव, सिद्धांत आदि आध्यात्मिक जगत् में काम नहीं आते। यहाँ काम आते हैं—दृढ़ इच्छाशक्ति, संकल्पबल, तप, पुरुषार्थ, धैर्य, विश्वास, समर्पण और समर्थ मार्गदर्शक का सान्निध्य।

अध्यात्म का मार्ग नितांत एकांत, रहस्य-रोमांच-विस्मय से भरा हुआ होता है और हर क्षण, प्रत्येक कदम पर नई-नई चुनौतियाँ प्रस्तुत करता है। इस पर चलने का दुस्साहस करना हर किसी के लिए संभव नहीं होता। जो चल पड़ते हैं, उनका भी इस पर टिके रह पाना अत्यंत कठिन होता है।

अधिकांश तो इस मार्ग पर प्रस्तुत होने वाली स्वयं की ही काली परछाईं से डरकर भाग निकलते हैं, कई अनेक तरह के भय-भ्रांति के शिकार हो विक्षिप्त-से हो जाते हैं और कुछ भटककर दिशाहीन हो जाते हैं। ऐसे भ्रांति-भटकाव से ग्रस्त लोग जीवनभर अध्यात्म के प्रति अध्यवसायी तो बने रहते हैं, किंतु उनकी दशा बहुत कुछ घड़ी के उस पेंडुलम की तरह हो जाती है, जो रुकता तो कभी नहीं, किंतु पहुँचता भी कहीं नहीं है।

जिन्हें बिना भटकाव एवं बाधाओं के निरंतर अध्यात्म मार्ग के सोपानों पर चढ़ते जाना है और सफलता की तीव्र अभीप्सा है, उन्हें इस मार्ग का चयन पूर्ण सजगता-समझ और दृढ़संकल्प के साथ करना चाहिए। इस क्षेत्र के हर जिज्ञासु अन्वेषक और साधक को यह ध्यान रखना आवश्यक है कि अध्यात्म में प्रवेश का हमारे पास जो मौजूदा साधन

है, वह है—हमारा मन। मन को जब बाह्य प्रकृति से हटाकर सूक्ष्मप्रकृति में प्रवेश कराने की कोशिश की जाती है तो वहाँ सबसे पहले सामना होता है मन में उठने वाले असंख्य विचारों और कल्पनाओं से।

इन बेतरतीब विचारों-कल्पनाओं की लहरों में कभी अतीत की स्मृतियाँ तो कभी भविष्य का चिंतन अथवा वर्तमान की चुनौतियाँ डूबते-उतराते रहते हैं। जप, ध्यान, तप, एकाग्रता जैसे साधनों का आश्रय मन को इस अवस्था से मुक्ति दिलाकर आगे बढ़ाने में अत्यंत सहायक होते हैं। इन अभ्यासों से मन की धारणाशक्ति, इच्छाशक्ति सुदृढ़ बनती है। यदि मन मजबूत और दृढ़संकल्प से युक्त हो जाए तो वह स्वयं ही विचार-कल्पनाओं का शमन करने में समर्थ होता है।

इसके पश्चात मन सूक्ष्मप्रकृति के उस सोपान में पहुँच जाता है, जिसे अचेतन के नाम से भी जाना जाता है। अंतर्यात्रा का यह पड़ाव विचार-कल्पनाओं से भरे सतही पड़ाव से हजार गुना दुष्कर, कठिन और रहस्यात्मक होता है। यहाँ मन पर जन्म-जन्मांतरों के सुप्त संस्कारों और प्रारब्ध का भंडार मौजूद होता है।

अध्यात्म पथ के यात्रियों के लिए सबसे अधिक भटकाने वाला, भय और भ्रांति उत्पन्न करने वाला सोपान यही होता है। इसे पार करने के लिए तप-योग आदि साधन-अभ्यास की तीव्रता के साथ-साथ जो सहायक तत्त्व अपरिहार्य हैं, वे हैं—साधक का धैर्य और समर्थ गुरु का संग।

यहाँ गुरु एवं मार्गदर्शक की आवश्यकता इसलिए होती है, क्योंकि प्रारब्ध और पूर्व संस्कारों के घने जाले आंतरिक चेतना को इस तरह लपेटे होते हैं, उनके सारे तंतु आपस में ऐसे गुँथे होते हैं कि इनको सुलझाने और खोलने में जरा भी त्रुटि हुई तो ये और ज्यादा उलझ जाते हैं और विपरीत तथा घातक परिणाम उत्पन्न कर देते हैं।

इसलिए यहाँ समर्थ गुरु का मार्गदर्शन आवश्यक है, ताकि उनके निर्देशन और संरक्षण में बिना किसी भटकाव व त्रुटि के इस पड़ाव को पार किया जा सके। प्रचंड पुरुषार्थ, अटूट धैर्य और समर्थ गुरु—इन तीनों की संयुक्त शक्ति और ऊर्जा से ही ये प्रारब्ध के पहाड़ टूटते-हटते हैं और तभी सूक्ष्मप्रकृति में अंतर्यात्रा के लिए आगे का मार्ग खुलता है।

जिनकी यात्रा बिना किसी भटकाव, भ्रांति अथवा विक्षिप्तता को प्राप्त हुए कुशलतापूर्वक गुरुकृपा से प्रारब्धजनित चट्टानों और संस्कारों के बीहड़ों को पार कर जाती है, वे परम सौभाग्यशाली हैं। यह सौभाग्य किसी-किसी को ही प्राप्त हो पाता है। इस पड़ाव के बाद ही अध्यात्म जगत् के प्रकाश की विविध रंग-बिरंगी किरणों की झलक मिलनी प्रारंभ हो जाती है। यह सिद्धियों-विभूतियों व अनेक तरह की शक्ति-सामर्थ्य के अकूत भंडार का क्षेत्र है, लेकिन ध्यान रहे कि यह अंतर्यात्रा का अंतिम पड़ाव नहीं है।

इस मार्ग के मर्मज्ञ इस रहस्य को बखूबी जानते हैं कि पिछले पड़ावों की तुलना में यह उनसे कहीं अधिक सूक्ष्म, कठिन और चुनौतीपूर्ण है। अक्सर लोग यहीं आकर ठहर जाते हैं या पतित हो जाते हैं। अंत:स्थ के इस क्षेत्र में विभूतियों के सम्मोहन, दिव्य आकर्षण और वैभव को समक्ष पाकर कई बार साधक अपना संकल्प विस्मृत कर बैठता है।

मूल संकल्प को खोते ही वह अपनी अंतर्यात्रा के परम लक्ष्य को भी खो देता है। इस पड़ाव पर ठहरे बिना, संकल्प से डिगे बिना, वही परम लक्ष्य को प्राप्त कर पाता है, जो इसके सम्मोहन और

आकर्षण से बच पाता है एवं यहाँ की सभी ऋद्धि-सिद्धियों को मार्ग की बाधाओं के रूप में स्वीकार करता है।

अध्यात्मवेत्ताओं की अनुभूति कहती है कि इस पड़ाव को बिना ईश्वरीय कृपा के पार कर पाना असंभव है; क्योंकि अंतश्चेतना से छद्म रूप में लिपटे दो विकट शत्रु—अहंकार और वासना, यहीं अपने स्वरूप को प्रकट करते हैं। अध्यात्म मार्ग के अनेकों सिद्ध, साधक, योगी जनों का तप-पुरुषार्थ इन्हीं शत्रुओं से परास्त हो जाता है। इन पर विजय प्राप्त करने के लिए तप, त्याग, समर्पण और ईश्वर के प्रति शरणागति ही सर्वोत्तम उपाय हैं।

यदि ईश्वरीय अनुकंपा से अध्यात्म मार्ग में यहाँ तक की गति संभव हो जाती है तो फिर अंतिम पड़ाव व अंतर्यात्रा का शिखर स्वयमेव प्रकट हो उठता है। परम प्रकाश की ज्योति आत्मचेतना के कण-कण को प्रकाशित कर देती है। विचार, विकल्प, प्रारब्ध, अहं, वासना—सब कुछ की परछाईं पूर्णत: विलीन हो जाती है। ऐसा जीवन परम प्रकाश से दीप्त एकाकार और पूर्णता को प्राप्त कर अध्यात्म पथ की सफलता और सार्थकता का परिचायक बनता है।

जीवन को पूर्णता प्रदान करने का यही एकमात्र मार्ग है। इससे कम में कहीं, कोई, कभी अध्यात्म फलित नहीं होता, अत: अध्यात्म के प्रति प्रत्येक जिज्ञासु को परमपूज्य गुरुदेव के बताए सूत्र '**अध्यात्म जीवन का शीर्षासन है**'—कथन का मर्म समझकर ही इस ओर कदम बढ़ाना चाहिए, ताकि इस क्षेत्र में प्रचलित बाह्य और आंतरिक भ्रांतियों, अज्ञानता और भटकाव से बचकर अपने पुरुषार्थ और प्रयासों को सार्थक दिशा प्रदान की जा सके। ❑

---

**राजा बहराम तीर चलाने में अत्यंत निपुण थे। एक बार अपनी रानी के साथ शिकार खेलने वन गए। वहाँ एक हिरन सो रहा था। बहराम ने एक तीर ऐसा मारा कि हिरन के कान को छूकर निकल गया। हिरन ने सोचा कि कान पर मक्खी बैठ गई है, उसने अपना पैर कान की तरफ उठाया। बहराम ने दूसरा तीर ऐसा मारा कि पैर और कान परस्पर जुड़ गए। बहराम ने प्रशंसाप्राप्ति की इच्छा से रानी की तरफ देखा, परंतु रानी ने केवल इतना ही कहा—"अभ्यास से सब कुछ हो सकता है।" बहराम को यह उत्तर अच्छा नहीं लगा। उन्होंने कहा—"तुम भी ऐसा अभ्यास करके दिखाओ।" रानी भी स्वाभिमानी थीं। वे विशेष कार्य का बहाना करके एक गाँव में जाकर रहने लगीं। वहाँ एक गाय का बछड़ा खरीदकर उसे उठाकर रोज छत पर चढ़ने का अभ्यास करने लगीं। जैसे-जैसे बछड़ा भारी होता जाता था, वैसे-वैसे रानी का बोझा उठाने का अभ्यास भी बढ़ता जाता था। तीन वर्ष उपरांत बहराम उसी गाँव में पहुँचे। रानी का बछड़ा अब बैल बन गया था। बहराम ने दूर से इसे देखा तो वे उत्सुकतावश बोले—"इतने बड़े प्राणी को स्त्री तो क्या, पुरुष के लिए भी उठाना संभव नहीं है; फिर आप इसे उठाकर छत पर किस प्रकार चढ़ती हैं?" रानी ने कहा—"राजन्! अभ्यास से सब कुछ संभव है।" राजा ने रानी को पहचान लिया और हार स्वीकार कर ली। वस्तुत: अभ्यास से सब कुछ संभव है।**

---

# सर्वसुलभ है शाश्वत सुख का मार्ग

इसमें कोई संदेह नहीं कि इस संसार में आत्मसुख के समान कोई सुख नहीं, आंतरिक आनंद के समान कोई आनंद नहीं, आत्मज्ञान के समान कोई ज्ञान नहीं। जो एक बार आत्मसुख, आंतरिक आनंद का स्वाद चख लेता है, उसे संसार के सारे सुख फीके प्रतीत होते हैं। अत: यह स्पष्ट है कि सच्चा सुख, शाश्वत सुख इंद्रियों से नहीं, वरन आत्मा से ही निस्सृत होता है।

धन-वैभव, स्त्री-पुत्र व भौतिक भोग पदार्थों से हमारी इंद्रियों को जो सुख प्राप्त होता है, वह क्षणिक है, क्षणभंगुर है, इसलिए भोग पदार्थों का भोग करके हमारी इंद्रियाँ कभी तृप्त नहीं होतीं। भला अग्नि में घी डालने से अग्नि कभी बुझ सकी है? क्या घी से अग्नि की प्यास कभी बुझ सकती है? नहीं, बिलकुल नहीं, कदापि नहीं, पर हमारा मन उन्हीं क्षणिक सुखों को पाने के लिए सदा लालायित रहता है।

विषय-भोगों में डूबे व्यक्ति को यही लगता है कि बस, एक बार और विषय-भोग कर लेने पर हमारी इंद्रियाँ सदा के लिए तृप्त हो जाएँगी और इसी आशा में जीव न जाने कितने जन्मों से विषय-भोग, भौतिक सुखभोग करने में लगा है, पर यह आशा, यह तृष्णा कभी पूरी होने वाली है ही नहीं। सच तो यही है कि कोई भी बाह्य पदार्थ, सच्चे सुख के कारण नहीं हैं। सच्चा सुख, शाश्वत सुख किसी भी बाह्य साधन की अपेक्षा नहीं करता। सच्चा सुख तो अपनी आत्मा में ही है, जिसे साधनात्मक पुरुषार्थ से ही कोई पा सकता है।

आत्मा से निस्सृत आनंद से ही हम सदैव के लिए तृप्त हो सकते हैं, आनंदित हो सकते हैं; क्योंकि आत्मा सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा का अंश है। आत्मा नित्य सनातन और पुरातन है। जो नित्य है, जो शाश्वत है; वही हमें नित्य आनंद, शाश्वत सुख प्रदान कर सकता है। चूँकि आत्मा परमात्मा का अंश है, इसलिए जीवात्मा को अपनी आत्मा में ही सत्-चित्-आनंद की अनुभूति हो सकती है। जीवात्मा को अपनी आत्मा में ही परम प्रेम, परम ज्ञान, परम सत्य की अनुभूति हो सकती है।

प्रश्न यह उठता है कि जीवात्मा को परम सुख, परम आनंद, परम प्रेम, परम ज्ञान व परम सत्य की अनुभूति होती कब और कैसे है? हर जीव में आत्मा के रूप में सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा का वास है तो फिर जीव को इसकी अनुभूति क्यों नहीं होती? जीव को सत्-चित्-आनंद की अनुभूति क्यों नहीं होती? जीव को परम सुख, परम आनंद, परम सत्य, परम ज्ञान की अनुभूति क्यों नहीं होती?

प्रश्न उठता है कि चेतन, अमल व सुख की राशि होते हुए भी जीव दु:खी क्यों रहता है? स्वयं के भीतर नित्य, मुक्त आत्मा के होते हुए भी जीव जन्म-मरण के बंधन में क्यों बँधा होता है? आत्मा के अजन्मा होते हुए भी जीव को मृत्यु का भय क्यों सताता है? यदि आत्मा आत्मज्ञान का स्रोत है, तो जीव में आत्मा का वास होते हुए भी उसे आत्मसुख, आत्मानंद, आत्मज्ञान की अनुभूति भला क्यों नहीं होती?

ये कुछ ऐसे प्रश्न हैं, जो अक्सर जिज्ञासु साधक के मन में उभर ही आते हैं। दरअसल जब तक जीवात्मा पर अज्ञान का, माया का, कर्म-संस्कार का आवरण रहता है, तब तक जीव स्वयं को नित्य, मुक्त, अजन्मा आत्मा मानने के बजाय शरीर ही मानता रहता है—फलस्वरूप वह स्वयं को शरीर के क्रियाकलाप, शरीर के सुख-दुःख, चित्त की वृत्तियों, चित्त के कर्म-संस्कार, राग-द्वेष आदि से आबद्ध रखता है।

इसलिए आत्मा के नित्यमुक्त होते हुए भी वह बंधन में होता है। अजन्मा होते हुए भी जीव शरीर की मृत्यु को ही अपनी मृत्यु मानने लगता है और वह मृत्यु से भयभीत होता है। स्वयं को शरीर मानने के कारण ही वह कर्त्तापन की भावना से हर कर्म करता है और स्वयं के लिए कर्म-संस्कारों का संचय करता रहता है। फलस्वरूप वह कर्म-संस्कारों के बंधन में बँधा हुआ होता है। इसलिए उसे परमानंद की अनुभूति नहीं हो पाती।

अस्तु संसार के जीवों के दुःखों का मूल कारण अज्ञान है। अपनी अज्ञानता के कारण, प्रत्येक जीव को विभिन्न जन्मों में जो शरीर मिलता रहा है उसी को वह अपना सब कुछ मानता रहा है। इसी अज्ञानता के कारण यह जीव इस शरीर के सुख को वास्तविक सुख और शरीर के दुःख को वास्तविक दुःख मानता रहा है।

जो भी अन्य जीव उसको शारीरिक सुख प्राप्त कराने में सहायक होते हैं, यह जीव उनको ही अपने सुख का कारण मानकर उनको अपना मित्र, अपना हितैषी मानता रहा है और उनसे राग-प्रीति करता रहा है तथा जो भी अन्य जीव उसको शारीरिक-मानसिक सुख प्राप्त करने में बाधक दिखते हैं और उसको शारीरिक-मानसिक दुःख देते हैं, उनको यह जीव अपने दुःख का कारण मानकर अपना शत्रु मानता रहा है और उनसे द्वेष करता रहा है।

स्वयं को शरीर व कर्त्ता मान कर्म करते रहने के कारण वह स्वयं के लिए अच्छे-बुरे कर्मों के संस्कारों का कर्मबंधन तैयार करता रहा है। इस प्रकार यह जीव अज्ञानता के कारण राग-द्वेष, हर्ष-विषाद, सुख-दुःख, लाभ-हानि, मान-अपमान के द्वंद्व के बंधन में बँधता हुआ दुःख भोगता रहा है।

सत्य यह है कि जिस शरीर को अपना मानकर और जिसके क्षणिक सुख के लिए यह जीव सब प्रकार के अच्छे-बुरे कार्य कर रहा है, वह शरीर भी उसका अपना नहीं है। यह शरीर केवल एक जन्म का ही साथी होता है। यह शरीर तो आत्मा का वस्त्र मात्र है, आवरण मात्र है। इसलिए तो अनादिकाल से जन्म-मरण करते हुए इस जीव ने न जाने अब तक कितने शरीर धारण किए हैं। हाँ! इस जीव की आत्मा सदैव से वही एक ही है और अनंतकाल तक वही रहेगी।

वस्तुतः हम शरीर नहीं आत्मा ही हैं, पर स्वयं को शरीर से आबद्ध कर लेने के कारण जीव शरीर के सुख-दुःख को ही अपना सुख-दुःख मानने लगता है। चित्त की वृत्तियों को अपनी वृत्तियाँ मानने लगता है, चित्त के संस्कार को जीवात्मा स्वयं का संस्कार मानने लगता है। इंद्रियों के विषयों को जीवात्मा अपना विषय मानने लगता है। जप, तप, ध्यान, स्वाध्याय, ज्ञान, कर्म, भक्ति के नित्य-निरंतर अभ्यास से जब आत्मा के ऊपर छाए अज्ञान का, अविद्या का, माया का आवरण हट जाता है, तब जीवात्मा अपने वास्तविक सत्-चित्-आनंदस्वरूप में सदा के लिए स्थित हो जाता है।

जीवात्मा का स्वयं के प्रति जीव भाव, देह भाव समाप्त हो जाता है और उसे अपने वास्तविक

स्वरूप का ज्ञान हो जाता है। उसे लोक-परलोक के सभी भोगों व कामनाओं से वैराग्य हो जाता है तब—उसी क्षण उसकी आत्मा से परम ज्ञान, परमानंद निस्सृत होने लगते हैं। उसकी आत्मा परमात्मज्ञान, परमात्मा के प्रकाश से जगमगा उठती है।

जैसे आकाश में बादल छा जाने से सूर्य का प्रकाश नहीं मिल पाता, पर जैसे-जैसे बादलों का आवरण हलका होता जाता है, वैसे-वैसे आकाशमंडल में सूर्य का प्रकाश तीव्र होता जाता है और जब आकाश से बादलों का आवरण पूर्णतः समाप्त हो जाता है तब पूरा आकाशमंडल, गगन-मंडल सूर्य की आभा से, ज्योति से जगमगा उठता है। वैसे ही नित्य-निरंतर अपनी आत्मा में परमात्मा का चिंतन, मनन, ध्यान करते-करते अंततः आत्मा के ऊपर छाए हुए अज्ञान, अविद्या, माया, कर्म-संस्कार के आवरण, बादल छँटते जाते हैं और आत्मा परमात्मज्योति से जगमगा उठती है।

तब जीव को स्वयं की आत्मा में ही परम ज्ञान, परमानंद की अनुभूति होने लगती है। वह अपने वास्तविक स्वरूप को पहचान लेता है और वह स्वयं को शरीर की जगह आत्मा मानकर ही लोक-व्यवहार करता है। वह इस जगत् को ब्रह्म की अभिव्यक्ति मानकर निष्काम भाव से अपने कर्त्तव्य कर्म करता जाता है।

उस स्थिति में उसे अनुपम, अतींद्रिय, अलौकिक आनंद की अनुभूति होने लगती है। यही जीवात्मा के मोक्ष की स्थिति है। वह राग-द्वेष, सुख-दुःख, मान-अपमान से परे होकर निष्काम भाव से कर्म करता जाता है। तब जीवात्मा भौतिक शरीर में होते हुए भी विदेह अर्थात देह से परे हो जाता है और भौतिक शरीर छूट जाने पर जन्म-मरण के बंधन से सदा के लिए मुक्त होकर परमानंद की अवस्था में स्थित हो जाता है।

अस्तु यह स्पष्ट है कि जीवात्मा सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा का अंश है। उसमें परम ज्ञान, परमानंद बीज रूप में मौजूद हैं, पर जैसे बीज में विशाल वृक्ष छिपा अवश्य होता है, पर उस बीज से वह वृक्ष तभी प्रकट होता है, जब उस बीज को सम्यक भौगोलिक जलवायु प्राप्त होती है। जब उस बीज को उसके अनुकूल मिट्टी, जल, धूप आदि उपयुक्त तत्त्व प्राप्त होते हैं, तब उस छोटे से बीज में अंकुरण होता है, वह अंकुरण एक नन्हे पौधे का रूप धारण कर लेता है, फिर कालांतर में वह नन्हा-सा पौधा ही विशाल वृक्ष के रूप में परिणत हो जाता है और देखते-ही-देखते उसकी डालियाँ पल्लव, पुष्प और फलों से लद जाती हैं। उस विशाल वृक्ष की छाया में अगणित पथिक विश्राम पाते हैं, उसके फलों की मधुरता सबको तृप्त करती है, उसके फूलों की खुशबू से सारा वातावरण महक उठता है।

यह सब कुछ तभी संभव हो पाता है, जब एक नन्हे-से बीज को अनुकूल जलवायु प्राप्त होती है। यदि उस बीज को सही जलवायु प्राप्त न हुई होती तो उस बीज से वृक्ष प्रकट नहीं हो पाता। वैसे ही जीवात्मा सत्-चित्-आनंदस्वरूप परमात्मा का अंश तो है। जीवात्मा में परम ज्ञान, परमानंद का बीज तो है, पर उस बीज से परम ज्ञान, परमानंद निस्सृत होना तभी संभव है, जब उस बीज को सम्यक साधनात्मक, आध्यात्मिक जलवायु प्राप्त हो।

विभिन्न प्रकार के पौधों को विकसित होने के लिए विशिष्ट भौगोलिक जलवायु की आवश्यकता होती है। किसी पौधे के लिए गरम जलवायु, किसी के लिए शीत जलवायु तो किसी के लिए भूमध्यसागरीय जलवायु की आवश्यकता होती है। उस अनुकूल जलवायु को पाकर ही पौधे

सम्यक रूप से पुष्पित, पल्लवित और विकसित होते हैं।

युगऋषि परमपूज्य गुरुदेव श्रीराम शर्मा आचार्य जी के अनुसार जीवात्मा में परमानंद निस्सृत हो सके, प्रकट हो सके, उसके लिए जिस आध्यात्मिक जलवायु की आवश्यकता होती है उसे ही उपासना, साधना और आराधना कहते हैं। उपासना, साधना, आराधना अर्थात भक्तियोग, ज्ञानयोग और कर्मयोग के त्रिवेणी संगम में नित्य स्नान करते-करते साधक का चित्त निर्मल होता जाता है।

उपासना के अंतर्गत अपने हृदय गुफा में स्थित आत्मा में निराकार ज्योतिरूप परमात्मा का अथवा परमात्मा के किसी साकार रूप का सतत चिंतन, मनन, ध्यान, सुमिरण, स्मरण करते-करते आत्मा पर छाए हुए अज्ञान, अविद्या, माया, कर्म संस्कार के बादल छँटते जाते हैं।

फिर जैसे धरती के अंदर बोए गए बीज से अंकुरित हुआ पौधा धरती की परत तोड़ता हुआ ऊपर बाहर निकल आता है, वैसे ही आत्मा में ब्रह्म का चिंतन, मनन, ध्यान करते-करते जीवात्मा को अपने वास्तविक स्वरूप अर्थात 'सोऽहम्'; 'अहं ब्रह्मास्मि' मैं वहीं हूँ; मैं सत्-चित्- आनंदस्वरूप हूँ; 'मैं ब्रह्म हूँ' की अनुभूति होने लगती है। उसे ब्रह्म और आत्मा की एकता की अलौकिक अनुभूति होने लगती है।

साधना के अभ्यास के अंतर्गत साधक सतत नित्य-अनित्य, सत्य-असत्य का चिंतन करता रहता है। वह जीव और ब्रह्म की एकता का अनुभव करता जाता है और तदनुरूप लोक-व्यवहार करता है, उपासना में स्वयं को हुई दिव्य अनुभूति को वह साधना अर्थात संयम के माध्यम से सुरक्षित बनाए रखता है।

आराधना के अंतर्गत वह निष्काम कर्म करता हुआ, विश्व-ब्रह्मांडरूप भगवान की सेवा करता हुआ अपने चित्त में पुन: किसी नए कर्म-संस्कार के उत्पन्न होने की संभावना को ही सदा-सदा के लिए समाप्त कर देता है। इस तरह उपासना उसे ईश्वर के समीप लाती है, साधना अनुशासित करती है और आराधना समर्पित करती है।

इस प्रकार वह सभी प्रकार के बंधनों से मुक्त हो आनंदित होता हुआ आनंद में ही स्थित हो जाता है। मुक्ति और आनंद का यह मार्ग हर सच्चे साधक के लिए सहज ही सुलभ है। अस्तु इस मार्ग पर श्रद्धा, भक्ति व धैर्य के साथ नित्य-निरंतर चलते हुए कोई भी साधक अपने साध्य को अवश्य ही प्राप्त कर सकता है। ❑

पर्व विशेष

# राष्ट्रधर्म के प्रणेता—गुरु गोविंद सिंह जी

30 मार्च, 1699 को वैशाखी का पवित्र पर्व था। 80 हजार से ज्यादा लोगों की संगत उस वैशाखी के पवित्र पर्व पर हुई थी और हर कोई, जो उस महापर्व का अंग बन रहा था—वह गुरु गोविंद सिंह जी के दर्शनों के लिए व्याकुल था। गुरु गोविंद सिंह जी के हृदय में पर कुछ और ही योजना चल रही थी। वे अपने शिष्यों की अग्निपरीक्षा लेना चाहते थे। जैसे ही पर्वपूजन का क्रम संपन्न हुआ, वैसे ही वे एक तलवार लेकर मंच पर प्रकट हुए और जोर से गरजते हुए स्वरों में बोले—"इस भीड़ में क्या कोई एक ऐसा है, जो सच्चा बलिदान देने को तैयार है?"

सभी के सिर उत्सुकता से मंच की ओर मुड़ गए। सभी सोचने लगे कि आज गुरुदेव क्या चाहते हैं? गुरु गोविंद सिंह अपनी बात स्पष्ट करते हुए बोले—"है कोई सिख बेटा, जो करे अपना शीश भेंटा?" और किसी भेंट की कामना मुझे नहीं है। अपनी बात को आगे बढ़ाते हुए वे बोले—"न मुझे साथी चाहिए, न पैसा चाहिए, न शस्त्र चाहिए, न दौलत चाहिए—यदि किसी को कुछ देने का मन हो तो मुझे सच्चे बलिदानी का सिर चाहिए।" उनका ऐसा कहना था कि भरी सभा में सन्नाटा छा गया। जहाँ अभी हजारों के कोलाहल का स्वर गूँज रहा था तो वहाँ यकायक नीरवता व्याप्त हो गई।

ऐसे में लाहौर का एक युवक दयाराम खड़ा हुआ। गुरु गोविंद सिंह उसका हाथ पकड़कर तंबू के भीतर ले गए। अंदर से तलवार चलने की आवाज आई और बाहर खड़े लोगों ने देखा कि खून की कतार बाहर को बह निकली। गुरु गोविंद सिंह फिर बाहर आए और बोले—"मेरी कृपाण अभी चार प्यारों की कुरबानी और माँगती है।" उनका इतना कहना था कि दिल्ली के धर्मदास, गुजरात के मोहकमचंद, कर्नाटक के साहिब चंद और पुरी के हिम्मतराम—अपने गुरु के वचनों की रक्षा करने आगे आए।

सत्य तो यह था कि गुरु गोविंद सिंह को उनके प्राणों की प्यास नहीं थी, वे उनका लहू नहीं चाहते थे—वो तो उनकी परीक्षा थी। परीक्षा ये देखने के लिए थी कि राष्ट्र की रक्षा के लिए, संस्कृति की रक्षा के लिए—बिना किसी शर्त के, बिना किसी कामना के अपने जीवन का बलिदान दे देने का साहस किसमें है?

वो पाँचों जीवित थे, खून नकली था और वो पाँचों, पंचप्यारे कहलाए। उस दिन इस राष्ट्र की सौभाग्यशाली भूमि पर खालसा पंथ का उदय हुआ—भक्ति के साथ शक्ति का उदय हुआ, पवित्रता के साथ प्रखरता का उदय हुआ, विवेक के साथ वेदना का उदय हुआ।

यदि उस दिन इस धरती पर उस गौरवशाली सोच का उदय न हुआ होता कि हमारे हृदय में भक्ति और हमारे कर्म में शौर्य की जरूरत है तो संभवतया इस भूमि पर संस्कृति, सभ्यता, संस्कार—इन सबको सुरक्षित रख पाना संभव ही नहीं हो पाता। यह सोच इस भारत की भूमि को देने वाले कालजयी व्यक्तित्व गुरु गोविंद सिंह जी का यह देश सदा ऋणी रहने वाला है। उनके जैसे युगांतरकारी व्यक्तित्व कभी-कभी ही इस धरती पर आते हैं।

एक अद्‌भुत साधक, तपस्या की प्रतिमूर्ति, अद्‌भुत संगठनकर्त्ता, पराक्रमी योद्धा, महान संत—ये सभी उनके महानतम व्यक्तित्व के अनेकों आयामों में से कुछ आयाम हैं। हजारों व्यक्तियों के बराबर का जीवन उन्होंने अकेले ने जिया। इस राष्ट्र की रक्षा के लिए उन्होंने अपने संपूर्ण परिवार को बलिदान करने में संकोच नहीं किया। जब उनकी धर्मपत्नी ने उनसे पूछा—"मेरा तो एक भी पुत्र जीवित नहीं रहा तो अब मैं किसे देखूँ?" तो उन्होंने उत्तर दिया—

**"इन पुत्रन के सीस पर वार दिए सुत चार।**
**चार मुए तो क्या हुआ, जीवित कई हजार॥"**

गुरु गोविंद सिंह का जीवन हमें राष्ट्रभक्ति का संदेश देता है। उनका जीवन हमें सिखाता है कि देश के लिए मर-मिटना; खून का एक-एक कतरा बहा देना; अपनी एक-एक साँस को सौंप देना ही सच्चा धर्म है। वो समाज को यह सिखाकर गए कि धर्म तोड़ना नहीं सिखाता, जोड़ना सिखाता है। धर्म गिरना नहीं सिखाता, उठना सिखाता है। बँटना नहीं सिखाता, मिटना सिखाता है।

इसीलिए उन्होंने दो शब्दों का प्रयोग किया, एक का नाम है—संगत और दूसरे का नाम है—पंगत। संगत का मतलब—अंत:करण में इस भाव को धारण करना कि मैं परमपिता परमेश्वर की संतान हूँ, छोटे कार्यों को करने के लिए धरती पर नहीं आया हूँ और पंगत का मतलब—सब समान हैं। आज इस देश को इसी एकत्व के भाव वाली, समानता के भाव वाली सोच की जरूरत है। किसी समय में उन्होंने कहा था—

**सवा लाख से एक लड़ाऊँ,**
**चिड़ियों से मैं बाज लड़ाऊँ,**
**तब गोविंद सिंह नाम कहाऊँ।**

आज वैसे ही व्यक्तित्वों को आगे आने की जरूरत है, जो राष्ट्र के स्वाभिमान की रक्षा के लिए लाखों से लड़ पाने की स्थिति में हों। ऐसे व्यक्तित्वों को जन्म देने की सोच देने वाले गुरु गोविंद सिंह जी को उनकी जयंती पर आज एक भावभरा नमन प्रेषित है। ❑

---

**स्कॉटलैंड में पर्थ नामक नगरी में दो गरीब विधवाएँ रहती थीं। एक का नाम था ऐनी और दूसरी का नाम था मेरी। इन दोनों में बहुत प्रेम था। मजदूरी करने साथ-साथ जातीं और साथ-साथ भोजन बनातीं। उन दोनों की दुनिया छोटी, परंतु संतोषपूर्ण थी। दैववश मेरी बीमार हुई व एक सप्ताह उपरांत ही उसकी मृत्यु हो गई। ऐनी को बहुत दु:ख हुआ।**

**एक रात को ऐनी बिस्तर पर लेटी थी कि उसे स्वप्न में मेरी की जीवात्मा दिखाई दी। ऐनी डरी। उसे डरता देख मेरी बोली—"डरो मत ऐनी! मेरे ऊपर कुछ कर्ज है, जिसे चुकाए बिना मरने के कारण मेरी आत्मा को शांति नहीं मिली है। मेरा जो भी सामान है, उसे बेचकर इस कर्ज को अदा कर दो।"**

**इतना सुनते ही ऐनी की नींद टूट गई। अगले ही दिन ऐनी ने सामान बेचकर उस धन से मेरी के कर्जदार का कर्ज चुका दिया। मेरी की छायामूर्ति फिर कभी नहीं दिखाई दी।**

# शिष्यत्व का सुपथ

सद्गुरु की कृपा और महिमा अनंत, अपार और अपरिमित है, परंतु इस कृपा के साथ एक विशिष्ट अनुबंध भी जुड़ा हुआ है। यह अनुबंध है शिष्यत्व की साधना का। जिसने शिष्यत्व की कठिन साधना की है, जो अपने गुरु की प्रत्येक कसौटी पर खतरा उतरा है—वही उनकी कृपा का अधिकारी है।

'गु' का अर्थ है—अंधकार या अज्ञान तो वहीं 'रु' का अर्थ है—उसका निरोधक। गुरु वे हैं, जो अज्ञान का नाश करके ज्ञान का प्रकाश प्रकाशित करते हैं। गुरु मात्र ज्ञान ही नहीं देते, बल्कि अपनी कृपा से शिष्य को सब पापों से मुक्ति भी प्रदान करते हैं।

गुरुकृपा एक ऐसा वरदान है, जब शिष्य पूर्णता में जाग्रत होता है। जितनी अधिक कृतज्ञता, उतनी अधिक कृपा। जितनी कृपा, उतनी प्रसन्नता, उतना अधिक ज्ञान। यह एक ऐसा अवसर है, जब हम उनसे सीखे हुए ज्ञान के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। गुरुतत्त्व एक सिद्धांत है, बुद्धिमत्ता है। गुरु एक तत्त्व है, हमारे भीतर की गुणवत्ता है। यह एक शरीर या आकार में सीमित नहीं है।

द्वापर युग की एक कथा है, जब भगवान कृष्ण ने अपने परम मित्र और बुद्धिमान उद्धव को अपनी गोप-गोपिकाओं के पास भेजा। वे भक्ति की भावना से पूर्ण थे। उद्धव उनके पास कुछ बुद्धिमत्ता और युक्ति की बातें बताने लगे, लेकिन किसी ने भी उनकी बातों में रुचि नहीं दिखाई।

उन सबने कहा—''हमें भगवान कृष्ण की कोई कहानी सुनाओ, हमें बताओ कि द्वारका में क्या हो रहा है, वे कहाँ हैं। अपना कृष्ण प्रेम अपने पास ही रखें। हमें बुद्धिमत्ता से कोई लेना-देना नहीं है। हम भक्ति के साथ प्रसन्न हैं और हम भक्ति में प्रसन्न हैं। हमें तो नाचने-गाने दो।'' बस वे ये सब ही चाहते थे। प्रेम हमको इस प्रकार पावन बना देता है। यही वह सब है, जहाँ सारी सीमाएँ गिर जाती हैं, हम अपने चारों ओर एकात्म का अनुभव करते हैं और पूरे ब्रह्मांड में उसी एक को अनुभव करते हैं। इसे ही 'गुरुतत्त्व' कहते हैं।

जब हमारे अंदर अपनी कोई इच्छाएँ, वासनाएँ नहीं रह जातीं, तब हमारे जीवन में गुरुतत्त्व का उदय होता है। यह गुरुतत्त्व प्रत्येक व्यक्ति में है। दिव्यता एवं पावनता हमारी स्वाभाविक प्रकृति है। जब हम अपने स्वभाव में विश्राम करते हैं, तब वहाँ कोई उलझन नहीं होती है, लेकिन अपने जीवन में हम तब उलझन अनुभव करते हैं, जब कुमार्ग पर बढ़ते हैं। हम कुछ गलत करने पर बुरा अनुभव करते हैं।

गुरु हमारी उन सब उलझनों को अपने ऊपर ले लेते हैं और हमारे अंदर प्रेम की ज्योति जला देते हैं। अपना सब कुछ गुरु को समर्पित कर देना चाहिए। अपना क्रोध, अपनी परेशानी, अपनी सभी बुरी भावनाएँ। नकारात्मकता हमको नीचे की ओर खींचती है। सकारात्मकता हम में गर्व और अहंकार भर देती है। हमारा पूरा जीवन जटिल एवं रहस्यपूर्ण है। जब हम ये सब उन्हें समर्पित कर देते हैं तो हम मुक्त हो जाते हैं। हम एक फूल की भाँति हलके हो जाते हैं। तब हम एक बार फिर मुस्करा सकते हैं और जीवन के क्षणों का आनंद ले सकते हैं। इसके

पश्चात हमारे अंदर जो कुछ शेष रह जाता है, वह विशुद्ध प्रेम है।

युगों से यह बुद्धि और ज्ञान इस विश्व को मिलता रहा है। ज्ञान के लिए गुरुओं के प्रति कृतज्ञता प्रकट करते हैं। ये उस महान ज्ञान के प्रति कृतज्ञ होने का दिव्य अवसर है, जो हमें गुरुओं से प्राप्त हुआ है। इस ज्ञान ने हमें जिस प्रकार रूपांतरित किया है, उसके लिए कृतज्ञ बनना चाहिए। यह वह क्षण है, जब हम ज्ञान और प्रेम को एक साथ मनाते हैं। मन का संबंध चंद्रमा से है और पूर्ण चंद्रमा पूर्णता का प्रतीक है, उत्सव का प्रतीक है, चरम का प्रतीक है। हम कुछ भी माँगें, वह पूरा हो जाता है।

सर्वोत्तम और सबसे उच्च इच्छा है—ज्ञान और भक्ति। धन से प्रसन्नता खरीदी नहीं जा सकती। साधन-सुविधा बड़ी बात नहीं है, लेकिन जो बातें माँगी जा सकती हैं और उनसे जीवन सफल हो जाता है, वे हैं—हमने कितना प्रेम बाँटा है और हमको कितना ज्ञान प्राप्त हुआ है। हमारे साथ ज्ञान ही जाता है। चेतना पर जिसका सबसे गहरा प्रभाव होता है, वह ज्ञान है। ज्ञान वह नहीं है, जो पुस्तकों में पढ़ते हैं। ज्ञान अनुभव है। हम कितने सजग हैं? हमारा मन कितना विशाल है और हमने इस विश्व को कितना प्रेम दिया है।

जिनको उच्च ज्ञान की आकांक्षा है, वे इसकी गहराई तक जाते हैं। यह तो एक सागर की भाँति है। कुछ लोग इसके किनारे पैदल चलते हैं और ताजी हवा प्राप्त करते हैं और उसी से प्रसन्न हो जाते हैं। कुछ लोग इसमें पैर डुबोकर सागर की तरंगों को अनुभव करते हैं। कुछ लोग समुद्र की गहराई में उतरते हैं और इसमें उन्हें मूँगा एवं बहुमूल्य वस्तुएँ प्राप्त होती हैं। किनारों पर ही घूमने से यह प्राप्त नहीं होता है। हमें अपने जीवन की गहराई में उतरना चाहिए।

इस संसार में एक भी ऐसा व्यक्ति नहीं है, जिसे शांति, प्रेम और प्रसन्नता नहीं चाहिए। यही हमारी आत्मा का सौंदर्य है। जितनी अधिक कृतज्ञता, उतनी अधिक कृपा। जितनी कृपा, उतनी प्रसन्नता, उतना अधिक ज्ञान। हमें अपने आप को विशालता में स्थिर करना चाहिए। आध्यात्मिकता के पथ पर बढ़ते हुए अपने अंतर की समीक्षा करनी चाहिए। अपने उद्देश्य का नवीनीकरण करना चाहिए।

गुरुचेतना के प्रकाश में हमेशा स्वयं को परखते रहना चाहिए। हमें यह देखना चाहिए कि हमारे अंदर कहीं कोई लालसा, वासना तो पनप नहीं रही है। कहीं कोई चाहत तो नहीं उमड़ रही। यदि ऐसा है तो हमें अपनी मन:स्थिति को कठिन तप करके बदल डालना चाहिए।

पाप का छोटा-सा अंकुर, अग्नि की चिनगारी की तरह है, जिससे क्षण भर में अपने जीवन की समस्त पुण्य, तप की पूँजी भस्म हो सकती है। अत: परमपूज्य गुरुदेव के सभी शिष्यों के लिए यही निर्देश है कि जीवन को तृष्णा एवं सुख की चाहत से सदा दूर रखें। यही गुरुकृपा की प्राप्ति का अमोघ मंत्र है। ❑

---

**मुमुक्षोर्बुद्धिरालम्बमन्तरेण न विद्यते।**
**निरालम्बैव निष्कामा बुद्धिर्मुक्तस्य सर्वदा॥** ***—अष्टावक्र गीता, 8/44***

***अर्थात मुमुक्षु पुरुष की बुद्धि आलंबन के बिना नहीं रहती। मुक्त पुरुष की बुद्धि सदा निष्काम और आश्रयरहित रहती है।***

---

# शौर्य एवं साहस का प्रतीक रानी दुर्गावती
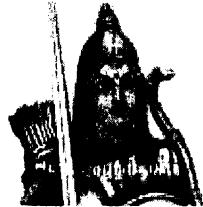
महारानी दुर्गावती प्रसिद्ध वीरांगना थीं। उनका जन्म 5 अक्टूबर, 1524 को चंदेल सम्राट कीरतराय के यहाँ हुआ था। महारानी दुर्गावती का नाम इतिहास में स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उन्होंने अपने राज्य की रक्षा के लिए अकबर के साम्राज्य से टक्कर ली और अपने प्राण उत्सर्ग कर दिए। वर्तमान जबलपुर 16वीं शताब्दी में गढ़मांडला राज्य का एक अंग था। गोंड राजाओं का राज्यकाल लगभग 400 वर्ष रहा।

गढ़मांडला का गोंड राज्य पन्ना, दक्षिण में नागपुर, पूर्व में बिलासपुर एवं पश्चिम में भोपाल तक फैला था। इसी गोंड साम्राज्य के सबसे प्रतापी राजा संग्राम शाह हुए। इन्हीं के शासनकाल में 51 गढ़ों का गोंड साम्राज्य स्थापित हुआ। यह राज्य उत्तर से दक्षिण 300 मील व पूर्व से पश्चिम 225 मील कुल 67,500 वर्गमील के क्षेत्र में फैला हुआ था। पराक्रमी संग्राम शाह की पुत्रवधू थीं महारानी दुर्गावती। जिनका शासनकाल सन् 1550 से 1564 तक माना जाता है।

राजकुमारी दुर्गावती अत्यंत सुंदर, तेजस्विनी, सुशील और वीर थीं। आखेट पर जाना तथा हिंसक जानवरों का आखेट करना, उनकी प्रिय क्रीड़ा थी। इनका विवाह संग्राम शाह के पुत्र दलपत शाह के साथ हुआ, किंतु उनका वैवाहिक जीवन बहुत ही थोड़े समय तक रहा। भरी तरुणाई में दलपत शाह का निधन हो गया और महारानी दुर्गावती ने अपने किशोर पुत्र वीर नारायण की ओर से गढ़मांडला के शासन की बागडोर सँभाल ली।

महारानी दुर्गावती धार्मिक प्रकृति की थीं। धर्मप्रिया रानी दुर्गावती ने अपने शासनकाल में अनेक मंदिरों और मठों का निर्माण कराया। प्रजाहित में जलाशयों, कुओं, धर्मशालाओं आदि का निर्माण भी रानी के शासनकाल की ही देन है। जबलपुर में 52 तालाब रहे हैं—जिनमें से अधिकांश सूख गए हैं और उन पर निर्माण हो गया है। कुछेक अभी भी शेष हैं।

रानी का शासन मुगल सम्राट अकबर की बरदाश्त से बाहर था, अत: उसने बहाने से चढ़ाई कर दी। कहते हैं कि रानी के पास एक अत्यंत सुंदर सफेद रंग का हाथी था, जिसका नाम सरमन था। उनके दीवान आधार सिंह विश्वासपात्र व कुशल राजनीतिज्ञ थे।

अकबर ने इन दोनों को रानी से उपहारस्वरूप माँगा। रानी ने तिरस्कारपूर्वक खबर भिजवा दी कि ये दोनों नहीं भेजे जा सकते हैं। इस पर अकबर नाराज हो गया और उसने आसफ खाँ को गढ़मांडला पर चढ़ाई करने भेज दिया।

जबलपुर के निकटवर्ती उस ऐतिहासिक स्थल नरेई नाले पर युद्ध की परिस्थितियाँ बन गईं। कुछ लोगों ने रानी को सलाह दी थी कि अच्छा हो सुलह कर ली जाए, किंतु रानी ने उत्तर दिया—"मैं सिंहनारी हूँ। क्या कभी सिंह और सिंहनी मैदान छोड़कर भागते हैं? मैं जिल्लत की जिंदगी से मौत कहीं अधिक पसंद करूँगी।"

उस समय रानी के पास मात्र 2000 पैदल सैनिक थे। रानी उस समय जबलपुर में स्थित

अपने निवास मदनमहल में थीं। सारी स्थिति का गहन अवलोकन कर उन्होंने नरेई नाले के समीप पड़ाव डाल दिया। यह स्थान ढलवान जंगलों में है। इस स्थान में एक ओर गौर नदी और दूसरी ओर नर्मदा तथा पहाड़ियों से घिरा दुर्गम वन था। चारों ओर से इस स्थान में घुसना और निकलना कठिन था। वहीं रुककर रानी ने आसफ खाँ के पाँच हजार सैनिकों से मोर्चा लेने की योजना बनाई।

रानी का रणकौशल अद्‌भुत था। रानी स्वयं पुरुष वेश में सेना का संचालन कर रही थीं। रानी की रणनीति सफल हुई। दोनों सेनाओं का संघर्ष इस दुर्गम स्थान में हुआ और अकबर के करीब तीन हजार सैनिक मारे गए। मुगल सेना के पैर उखड़ गए और वह भागने लगी। रानी ने मौजा करीबा के पास से भागने वालों का शाम तक पीछा किया।

रानी का इरादा था कि रात को ही मुगल सेना पर आक्रमण कर दिया जाए, किंतु रानी की सलाह उसके दिनभर के थके-हारे फौजदारों को नहीं रुची। फलस्वरूप सूर्योदय के साथ ही मुगल सेना पहाड़ी में प्रवेश कर चुकी थी। अपने को घिरा देख रानी ने नवयुवा पुत्र वीर नारायण को सुरक्षित स्थान पर पहुँचा दिया और बड़े ही कौशल से रणसंचालन करती रहीं। एक तीर उनकी बाजू में लगा, उन्होंने उसे तुरंत निकाल फेंका, फिर दूसरा तीर उनकी आँख में लगा।

रानी ने इस तीर को भी निकाल फेंका। इसी समय तीसरा तीर उनकी गरदन में लगा। रानी बुरी तरह घायल हो गईं। जून का अंतिम सप्ताह था। ऊपर पानी बरस जाने से सूखे नरेई नाले में बाढ़ आ गई थी। घायल रानी चारों ओर से घिर गई थीं। इस स्थिति में उन्होंने आधार सिंह का खंजर छीन अपनी छाती में भोंक लिया। जबलपुर कैंट के निकटवर्ती नरेई नाले का यह युद्ध 23 और 24 जून को लड़ा गया। 24 जून को रानी ने जीवनलीला समाप्त की और इसके साथ ही गढ़मांडला में गोंड राज्य का सूर्य अस्त हो गया।

अकबर को गढ़मांडला विजय से अपार संपदा एवं संपत्ति प्राप्त हुई। रानी की पराजय के ऐतिहासिक महत्त्व को निरूपित करते हुए स्व० रामभरोसे अग्रवाल ने लिखा है कि गोंडवाना के पराभव के पश्चात लड़खड़ाते मुगल साम्राज्य को संबल मिल गया। गढ़मांडला राज्य के धन को पाकर अकबर ने तीन वर्ष में ही चित्तौड़ का विनाश कर दिया।

रानी दुर्गावती की पराजय ने उखड़ते हुए मुगल साम्राज्य की नींव जमा दी। जबलपुर से लगभग 12-13 मील दूर बरेला के पास आज भी महारानी की समाधि है, जहाँ प्रत्येक श्रद्धालु दो पत्थर या फूल चढ़ाकर अपनी श्रद्धांजलि अर्पित करते हैं। आजादी के बाद वहाँ महारानी की हाथी पर सवार भव्य मूर्ति स्थापित कर दी गई है।

महारानी दुर्गावती की कुरबानी एक अमरगाथा है। उनकी कोई तुलना नहीं है। भारत की माटी में मिलकर वे आज भी शौर्यगाथाओं में जीवंत हैं।

**शिखरों से ऊँची जिसकी नभ में छूती ख्याति थी।**<br>
**वह कोई और नहीं रानी दुर्गावती देश की थाती थी॥**<br>
**दुर्गा का रूप लिए साहस, शौर्य की वह मूरत थी।**<br>
**मुगलों को पराभूत करती देवी की वह सूरत थी॥**

ऐसी वीरांगना क्षत्राणी को देश का शत-शत नमन है। ❑

---

**कलियुग में उपाय है भक्तियोग— भगवान का नाम गुणगान और प्रार्थना। भक्तियोग ही युगधर्म है।**

*—स्वामी रामकृष्ण परमहंस*

---

# सतत सत्कर्म करें

मनुष्य जितना चाहे प्रयत्न कर ले, लेकिन उसके द्वारा किए हुए कार्यों का फल तो उसे एक दिन भोगना ही पड़ता है। एक किसान जिस प्रकार की फसल को पैदा करना चाहता है, वह उसी के बीज को बोता है; क्योंकि वह जानता है कि यही फसल उसके जीवन में खुशहाली लाएगी। इसीलिए कहा जाता है—**बोया पेड़ बबूल का तो आम कहाँ से खाय ?**

इसी प्रकार कर्मरूपी बीज का फल एक दिन अवश्य मिलता है। किस कर्म का फल कब मिलेगा, यह कोई नहीं जानता। इसलिए '**गहना कर्मणोगतिः**' कहा गया है। कर्म तीन प्रकार के बताए गए हैं—तामसी, राजसी और सात्त्विक। इन तीन गुणों से परे तो कोई कर्म है ही नहीं। तामसी कर्म परिणाम को विचार किए बिना अज्ञान से आरंभ किए जाते हैं, इन कर्मों का फल सबसे जल्दी मिलता है, ये कर्म दूसरों का अनिष्ट करने की भावना से किए जाते हैं।

इन कर्मों को करने वालों का अंत अति दु:खदायी होता है। जैसे एक डाकू द्वारा किसी सज्जन के घर डाका डालना। डाका डालने के कारण शायद उसको भौतिक सुखों की पूर्ति तो जल्द हो जाएगी, लेकिन बाद में सजा मिलने पर अंत अति कष्टदायी होगा। तामसी प्रवृत्ति वाला मनुष्य हर वक्त बुरे विचारों से घिरा रहता है। इसलिए ऐसे कर्मों से बचना चाहिए।

राजसी कर्म फल की इच्छा से किए जाते हैं। इन कर्मों का फल मनुष्य को जीवनपर्यंत मिलता रहता है। इसका फल मनुष्य के परिश्रम पर निर्भर करता है, जो मनुष्य अधिक परिश्रम करते हैं, वे संसार के सभी भौतिक सुख भोगने में कामयाब होते हैं। इनको कर्मों से लाभ-हानि, यश-अपयश, जय-पराजय इत्यादि, दोनों ही देखने को मिलते हैं।

ऐसे कर्म करने वालों की यह सोच होती है कि सांसारिक सुख भोगने के अतिरिक्त जीवन का उद्देश्य है ही नहीं। ऐसा भी होता है कि जीवन में कई बार प्रयत्न करने पर भी सफलता हाथ नहीं लगती, लेकिन बार-बार प्रयत्न करने पर एक दिन सफलता हाथ अवश्य आती है। इसलिए कहा जाता है—

**करत-करत अभ्यास के जड़मति होत सुजान।**<br>**रस्सी आवत जात तें, शिल पर पड़त निशान॥**

जो लोग एक बार में ही अपनी हार मान लेते हैं, वे अधिकतर जीवन में असफल रहते हैं। सात्त्विक कर्म दूसरों की भलाई के लिए बिना फल की इच्छा से किए जाते हैं। जीवन का उद्देश्य ही सात्त्विक कर्म होना चाहिए, सात्त्विक कर्मों द्वारा ही मनुष्य अपनी स्थिति में सुधार कर सकता है। हर जन्म प्राणी द्वारा किए हुए पूर्वजन्मों का ही फल होता है। मनुष्य जन्म सभी प्राणियों से श्रेष्ठ माना गया है; क्योंकि मनुष्य में ज्ञान का भंडार है।

मनुष्य जन्म पूर्वजन्मों में किए हुए अच्छे कर्मों का फल है, अतः इसे व्यर्थ नहीं गँवाना चाहिए। सात्त्विक कर्मों का फल मिलने में देर अवश्य लगती है, लेकिन इनके मिलने के बाद जीवन में इच्छाओं

की चाह खतम हो जाती है। इसलिए कहा जाता है—

**गोधन, गजधन, बाजधन और रत्नधन खान।**
**जब आवे संतोष धन, सब धन धूलि समान॥**

सात्त्विक कर्मों के द्वारा ही ज्ञान के चक्षु खुलते हैं, यह ज्ञान ही मनुष्य के जीवन में चहुँओर प्रकाश फैलाता है। संत पुरुष इसी ज्ञान की खोज में रहते हैं। ज्ञान का प्रकाश सूर्य के प्रकाश जैसा होता है। तारों का समूह हर समय आकाश में होने पर भी सूर्य के उदय हो जाने पर दिखना समाप्त हो जाता है।

इसी प्रकार ज्ञान का प्रकाश सांसारिक कष्टों से मुक्ति दिलाता है। इस सबके लिए जरूरी है अत्यंत संयम और इंद्रियों को वश में रखना। इंद्रियाँ हमारी हैं, फिर भी हम इनके वश में रहते हैं, यही मनुष्य के जीवन में उसके पतन का कारण बनती हैं, इसीलिए महापुरुषों ने सात्त्विक कर्मों द्वारा मनुष्य जीवन में मोक्ष प्राप्त किया। गौतम बुद्ध, भगवान महावीर, गुरु नानक एवं परमपूज्य गुरुदेव आदि महापुरुष सात्त्विक कर्म करके ही प्रेरणास्तंभ बने।

भगवान श्रीराम ने त्याग और श्रीकृष्ण ने कर्म का संदेश संसार को दिया। सात्त्विक कर्म करने वाले यह सोचते हैं—अपने लिए जीना तो पशुता है; दूसरों के लिए जीना ही मनुष्य धर्म है। अधिकांश मनुष्य अपना जीवन अपने परिवार के लालन-पालन में लगा देते हैं। परिवार तो हमारी सात्त्विक जिम्मेदारी है, इससे हम भाग भी नहीं सकते, लेकिन परिवार के अतिरिक्त भी जीवन में सोचने को बहुत कुछ है।

संसार में हर प्राणी को यह ध्यान रखना चाहिए कि उसके कर्मों का फल मिलना सुनिश्चित है। उसे इस सत्य पर विश्वास रखना चाहिए कि इस दुनिया में प्राणी को न्याय मिले या नहीं मिले, परंतु प्रभु के दरबार में उसके साथ अन्याय नहीं होगा। इसलिए हमें सतत सत्कर्म करने का अभ्यास करना चाहिए। हमें परिणाम की चिंता किए बिना ही कर्म करना चाहिए। प्रकृति केवल कर्म की भाषा समझती है। अतः हमें सत्कर्म करने के अवसर से वंचित नहीं रहना चाहिए। ❑

***

**परिचारिका सुमना से बोली—"भंते! तुमने सुना नहीं, गौतमी ने प्रव्रज्या ली है और अर्हंत भी प्राप्त कर लिया है। अब उन्होंने भिक्षुणी संघ स्थापित किया, अनेक महिलाएँ उसमें योग-साधनाएँ कर रही हैं। गौतमी चाहती है कि राजघराने की कन्याएँ भी इस हेतु आगे आएँ।"**

**सुमना बोली—"विद्या! आत्मकल्याण मनुष्य जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य है, परंतु सांसारिक कर्त्तव्यों की उपेक्षा करके मुक्तिमार्ग की ओर अग्रसर होना मुझे उचित नहीं लगता। कम आयु में भोग की प्रवृत्ति प्रबल होती है, मनोनिग्रह करना अत्यंत कठिन होता है। इसलिए ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ आश्रम के चरण पूर्ण करते हुए ही मुक्तिमार्ग की ओर अग्रसर होना चाहिए।"**

**सुमना ने तीनों आश्रमों के कर्त्तव्यों का पालन किया और वृद्धावस्था में प्रव्रज्या ग्रहण की। दीर्घकालीन तप के बाद भी जो अन्य भिक्षु-भिक्षुणियों को नहीं मिल पाया था, वह उसने थोड़े ही समय में प्राप्त कर लिया।**

***

# चित्तवृत्तियों के निरोध से ब्रह्मानंद

सागर तट पर बैठे कुछ तीर्थयात्री सागर के अप्रतिम सौंदर्य को देख अभिभूत हो रहे थे। वे सभी आपस में सागर की विशालता, सागर की गहराई व सागर के सौंदर्य के विषय में बातें कर रहे थे। वे दूर से आती हुई कई सरिताओं के सागर में हो रहे संगम को देख रहे थे। उस समय सागर में नौका-विहार कर रहे लोगों के आनंद की कोई सीमा न थी। सागर पर बरस रही चंद्रमा की अमृतमयी रश्मियों का सौंदर्य देखते ही बनता था।

ये सारे नजारे देख-देखकर सागर तट पर बैठे यात्री मानो आनंदातिरेक में पुलकित हुए जा रहे थे, पर यह क्या ? अचानक सागर में बहुत भारी उथल-पुथल हुई और सागर किनारे बैठे लोग अपनी जान बचाने को इधर-उधर भागने लगे। अचानक सागर में तूफान उठने लगा।

कुछ पल पूर्व शांत दिखने वाले सागर में भला अचानक यह क्या हुआ ? सागर में ऊँची-ऊँची लहरें उठने लगीं और देखते-ही-देखते सागर में नौका-विहार कर रहे हजारों लोग सागर की तेज व भयावह लहरों में समा गए। चारों ओर चीख, चीत्कार और हाहाकार मच उठा। सागर किनारे बैठे लोग भी वहाँ से जान बचाकर भागे।

वे सभी अपने गंतव्य पर पहुँच चुके थे, पर उस भयावह दृश्य को यादकर वे अभी भी रह-रहकर सिहर उठते थे। कुछ पल पूर्व जो हर्ष में डूबे थे, वे अब दु:ख, शोक और विषाद में डूबे थे। उस भयानक मंजर को याद कर वे दीर्घकाल तक दु:ख का अनुभव करते रहे।

वे अपने-अपने घरों को पहुँच चुके थे। जब नित्य साधना में वे अपने मन की आँखों से अपनी आत्मा में भगवान की मधुर-मनोहर छवि का दर्शन करने का प्रयास करते, तभी उनके मन में फिर वही वर्षों पूर्व की घटना उभर आती। साथ ही उनके जीवन की अन्य सुखद-दु:खद घटनाओं की स्मृतियाँ उनके मानसपटल पर एक-एककर उभर आतीं।

वे बार-बार भगवद्ध्यान में डूबने का प्रयास करते कि तभी कोई-न-कोई विचार मानस में उभर आता और उनका ध्यान भंग हो जाता। फलस्वरूप वे अपनी आत्मा में विराजमान परमात्मा का दर्शन नहीं कर पाते। वे सभी नियमित उपासना में लगे रहे, पर रह-रहकर उस भयानक मंजर के साथ उनके जीवन से जुड़ी अन्य घटनाओं की स्मृतियाँ उनके मन में बसी रहीं। फलस्वरूप वे न तो ध्यान की गहराई में उतर पाते और न ही अपनी आत्मा में परमात्मा की अनुभूति ही कर पाते।

दरअसल हम अपने जीवन में जो भी घटना, सुख-दु:ख, मान-अपमान आदि का अनुभव करते हैं—उनका असर, प्रभाव दीर्घकाल तक हमारे मानसपटल पर बना रहता है। हम संसार में जो कुछ भी देखते हैं, सुनते हैं या अच्छे-बुरे कर्म करते हैं उनका असर, प्रभाव सूक्ष्म संस्कार के रूप में हमारे चित्त में, हमारे अचेतन मन में अंकित होता जाता है, संचित होता जाता है।

सच कहें तो हमारे चित्त में संस्कारों का संसार बसा हुआ होता है। फलस्वरूप जैसे संसार में चहुँओर शोर-शराबा सुनाई पड़ता है, वैसे ही चित्त में भी

संस्कारों का, स्मृतियों का, अनुभवों का, घटनाओं का शोर-शराबा होता ही रहता है। अस्तु उस शोर-शराबे में मन का, चित्त का भगवान में लगना, डूबना आसान नहीं होता, पर फिर भी उस मन को, उस चित्त को नित्य-निरंतर भगवद्उपासना, भगवद्ध्यान में लगाए रहने से अंततः चित्त से संस्कारों का सफाया होने लगता है और चित्त में, मन में बसा संसार मिटने लगता है और चित्त संस्कारशून्य होने लगता है।

धीरे-धीरे मन भगवच्चिंतन, भगवद्स्मरण, भगवद्ध्यान करते-करते अपना निजस्वरूप खोकर पूरी तरह ब्रह्मचिंतन में लीन हो जाता है और तब जाकर साधक को ब्रह्म की अनुभूति होती है, पर यह अनुभूति दीर्घकाल तक की गई नित्य-निरंतर साधना, उपासना से ही हो पाती है; क्योंकि इसका कोई सरल रास्ता है ही नहीं।

दरअसल हमारा चित्त भी तो उस सागर की तरह है, जिसमें बार-बार संस्कारों की लहरें उठ रही हैं। कभी सुखद स्मृतियों की लहरें तो कभी दुःखद स्मृतियों की लहरें; कभी सुख की लहरें तो कभी दुःख की लहरें; कभी पाप की स्मृतियों की लहरें तो कभी पुण्य की स्मृतियों की लहरें; कभी अविद्या की लहरें तो कभी अस्मिता की लहरें; कभी राग-द्वेष की लहरें तो कभी अभिनिवेश की लहरें।

मन में, चित्त में इन लहरों का उठना ही तो हमारे दुःख का कारण है, हमारे शोक का कारण है, हमारे बंधन का कारण है; क्योंकि चित्त में उठने वाली लहरों के कारण ही, वृत्तियों के कारण ही तो हम अपने वास्तविक सत्-चित्-आनंदस्वरूप को देख नहीं पाते, पहचान नहीं पाते, अपने निजस्वरूप में हम स्थित नहीं हो पाते। फलस्वरूप हम ब्रह्मानंद की अनुभूति भी नहीं कर पाते।

तब हम करें तो क्या करें? हम वही करें, जिससे चित्त में उठने वाली लहरें शांत हो सकें, चित्त की वृत्तियाँ समाप्त हो सकें, चित्त की वृत्तियाँ, चित्त की लहरें शांत हो सकें, समाप्त हो सकें। इस हेतु शास्त्रों में ज्ञान, कर्म, भक्ति, ध्यान, स्वाध्याय, सत्संग आदि विभिन्न उपायों का, मार्गों का वर्णन है। इन उपायों का, मार्गों का अनुसरण करते हुए, नित्य-निरंतर योगसाधनों का अभ्यास करते हुए ही अगनित साधकों ने अपने चित्त की लहरों, चित्त की वृत्तियों का निरोध कर पाने एवं ब्रह्मानंद रस की अनुभूति कर पाने में सफलता पाई है।

सागर किनारे उस कटु अनुभव को पाने वाले यात्रियों ने भी यही मार्ग अपनाया। वे नित्य उपासना, साधना, आराधना में लगे रहे। वे सत्संग और शास्त्रों का स्वाध्याय करते रहे। उन यात्रियों ने अपनी नियमित उपासना, साधना, आराधना के साथ शास्त्रों का स्वाध्याय करना जारी रखा। फलस्वरूप वर्षों बाद उन यात्रियों को भी स्वयं के दुःख, शोक और विषाद में डूबे होने का कारण समझ में आया और वे पुनः तीर्थयात्रा को निकल पड़े। तीर्थयात्रा के दौरान वे पुनः उसी सागर तट पर पहुँचे, जहाँ वे वर्षों पूर्व गए थे।

संयोग से उस दिन शरद पूर्णिमा की रात थी। रात्रि हो जाने के कारण महज कौतुक, कुतूहल व मनोरंजन के लिए सागर तट पर घूमने-फिरने वाले लोग अब वहाँ से जा चुके थे। अतः वहाँ चारों ओर घोर निस्तब्धता और शांति व्याप्त थी। वे सभी यात्री सफेद धवल वस्त्र धारण किए हुए सागर तट पर खुले आसमान के नीचे कुश के आसन पर आसीन हुए।

उन्होंने देखा कि अपनी संपूर्ण कलाओं के साथ पूर्णिमा का चाँद आकाशमंडल में चमक रहा है और अपनी धवल चाँदनी से सागर को नहलाता हुआ उसे अपनी अमृतमयी रश्मियों का पान करा तृप्त अनुभव कर रहा है। वे सभी अपलक नेत्रों से, द्रष्टाभाव से, चंद्रमा के अप्रतिम सौंदर्य को मानो अपने नेत्रों से पी रहे थे। चंद्रमा की शीतलता व

चंद्रमा की रश्मियों की अमृतवर्षा में वे मानसिक रूप से स्वयं को स्नान करता हुआ महसूस करने लगे।

उन्हें ऐसा लगा मानो उनके रोम-रोम चाँदनी से धुल गए हों। उन्होंने देखा कि सागर की लहरों पर आकाशमंडल में प्रकाशित पूर्णिमा के चाँद का प्रतिबिंब उतर आया है। मानो सागर के अंदर भी एक चाँद उतर आया हो, उग आया हो। वे सागर की सतह पर उतरे हुए चाँद को अपलक नेत्रों से देख रहे थे, पर हाँ! बीच-बीच में जैसे ही सागर में लहरें उठतीं, वैसे ही सागर में दिख रहे चाँद का प्रतिबिंब टूटने और बिखरने लगता और उनकी नजरों से ओझल हो जाता।

यह देखकर उनके मन में विषाद भी होता। यह देखकर उन्हें सहसा शास्त्रों में पढ़ी गई बातों का स्मरण हो आया कि लहरें कैसी भी हों, सुख की हों या दु:ख की, पुण्य की हों या पाप की स्मृतियों की—लहरें हर हाल में आनंद में व्यवधान ही डालने वाली हैं। अत: सागर में चंद्रमा के पूर्ण स्वरूप के सौंदर्य को देखकर पूर्ण आनंद पाना तभी संभव है, जब समुद्र की लहरें पूरी तरह शांत हो सकें।

वे सभी यह चिंतन कर ही रहे थे कि तभी उन्होंने देखा कि सागर में उठ रही लहरें शांत हो चुकी हैं और उनके शांत होते ही चंद्रमा का पूर्णरूप, पूर्ण सौंदर्य उन्हें सागर में दिख पड़ा। उन्होंने नजरें उठाईं और आकाशमंडल में चमक रहे चंद्रमा को अपलक नेत्रों से जी भरकर देखा। आकाशमंडल में चमकते चंद्रमा को अपने अपलक नेत्रों से देखकर उन्होंने अपने हृदय में उतर जाने दिया।

वे कभी आकाशमंडल में चमक रहे चाँद को देखते तो कभी सागर में चमक रहे चाँद को देखते। उन्होंने यह महसूस किया कि आकाश के चाँद और सागर के चाँद में कोई भेद नहीं रहा। आकाश में चमक रहा चाँद ही तो सागर में चमक रहा चाँद है। सर्वव्यापी, सर्वज्ञ निराकार ब्रह्म ही तो हमारे भीतर आत्मा के रूप में विराजमान हैं, पर चित्त में उठ रही लहरों के कारण हम अपनी आत्मा में विराज रहे परमात्मा की अनुभूति नहीं कर पा रहे।

वे सभी आकाश और सागर के चाँद की अद्वैत स्थिति को कुछ पल तक यों ही निहारते रहे। वे पुन: आकाश के चाँद को कुछ देर तक अपलक निहारते रहे। लंबी-गहरी साँस लेते-छोड़ते हुए वे अपने आसन पर सुखासन में बैठे थे। पूर्णिमा के चाँद को देखते-देखते उनकी आँखें सहजता से बंद हो गईं, उनकी आँखें तो अब बंद थीं, पर मन की आँखें उसी परम सौंदर्य को देख रही थीं।

उन्होंने यह भावना की कि मैं चंद्रमा की रश्मियों की अमृतमयी वर्षा में स्नान कर रहा हूँ। पूर्णिमा का चाँद आकाशमंडल से उतरकर हमारे हृदय चक्र में, हृदय द्वार में, हृदय की गुफा में स्थित हमारी आत्मा में प्रवेश कर रहा है। चंद्रमा के आलोक से हमारा हृदय-लोक, आत्मलोक आलोकित हो रहा है।

पूर्णिमा का जो चाँद आकाश में चमक रहा है, वही अब हमारी आत्मा में चमक रहा है। हमारी आत्मा आलोकित हो रही है, परमात्मा का प्रकाश पूर्णिमा का चाँद बनकर हमारी आत्मा में उतर आया है। हमारे चित्त में अनुभवों, स्मृतियों के रूप में संचित संस्कार बाहर निकल रहे हैं। हमारे मन में, चित्त में अब संस्कारों का लेशमात्र भी शेष नहीं रहा।

हम अनुभव करें कि इसके फलस्वरूप हमारे मन में अब किसी भी तरह की लहरें नहीं उठ रहीं। चंद्रमा का ध्यान करते-करते हमारा मन आत्मा में ही लीन हो रहा है, आत्मा में विलीन हो रहा है। चित्त की संस्कारशून्य अवस्था में हम अनुभव कर सकते हैं कि निर्गुण, निराकार ब्रह्म ही पूर्णिमा का चाँद बन हमारी आत्मा में अभिव्यक्त होता है। आत्मा और ब्रह्म में कोई भेद नहीं। उस स्थिति में ही आत्मा और ब्रह्म की एकता की अनुभूति हो पाती है।

वे यात्री दीर्घकाल तक उसी भावदशा का नित्य ध्यान करते रहे। वे अपनी आत्मा में नित्य ब्रह्म का ध्यान पूर्णिमा के चाँद के रूप में करते रहे। दीर्घकाल तक ब्रह्म का अपनी आत्मा में ध्यान करते-करते अंततः उनके चित्त धुलने लगे, चित्त संस्कारशून्य होते गए, चित्त की वृत्तियाँ, चित्त की लहरें शांत होती गईं और उन्हें पल-पल अपनी आत्मा में ही ब्रह्म की अनुभूति होने लगी।

उन्हें ब्रह्मानंद का पल-पल अनुभव होने लगा। वे सभी अपने कर्त्तव्य कर्म करते, पर अब वे किसी कर्म को फल की आशा और आसक्ति से या कर्त्तापन की भावना से नहीं, बल्कि पूर्णतः निष्काम होकर स्वयं को ईश्वर के हाथों का एक उपकरण मात्र मानकर करते। वे अपनी आँखों से संसार में हो रही विविध प्रकार की घटनाओं को देखते, पर मात्र साक्षीभाव से, द्रष्टाभाव से।

इसलिए उन घटनाओं से, सुख-दुःख से वे कभी प्रभावित न होते। वे सुख-दुःख, हर्ष-विषाद से परे होकर सदा ब्रह्मानंद रस की ही अनुभूति करते। यही वह अवस्था है, जिसे शास्त्रों ने समाधि, निर्वाण, कैवल्य, मुक्ति या फिर आत्मसाक्षात्कार की अवस्था कहा है। यही परमानंद की अवस्था है।

इसलिए आचार्य शंकर ने साधकों को समाधि, निर्वाण, कैवल्य, मुक्तिरूपी परमानंद के मार्ग पर चलने का आह्वान करते हुए विवेकचूड़ामणि (363-371) में कहा है—"जिस समय रात-दिन के निरंतर अभ्यास से परिपक्व होकर मन ब्रह्म में लीन हो जाता है, उस समय अद्वितीय ब्रह्मानंद रस का अनुभव कराने वाली वह निर्विकल्प समाधि स्वयं ही सिद्ध हो जाती है। इस निर्विकल्प समाधि से समस्त वासना-ग्रंथियों का नाश हो जाता है तथा वासनाओं के नाश से संपूर्ण कर्मों का भी नाश हो जाता है और फिर बाहर-भीतर सर्वत्र बिना प्रयत्न के ही निरंतर आत्मस्वरूप की स्फूर्ति होने लगती है। निर्विकल्प समाधि की अवस्था को प्राप्त कर लेने के बाद चित्त फिर आत्मस्वरूप से कभी चलायमान नहीं होता। इसलिए सदा शांत मन से ब्रह्म में अपने चित्त को स्थिर करो और सच्चिदानंद ब्रह्म के साथ अपना ऐक्य देखते हुए अनादि अविद्या से उत्पन्न अज्ञानांधकार का ध्वंस करो। इसी से योगी को ब्रह्मानंद रस का अविचल अनुभव होता है। चित्तवृत्तियों का निरोध होते ही चित्त में सच्चिदानंदरसानुभव की बाढ़-सी आने लगती है।"

हमें निस्संदेह नित्य निरंतर दीर्घकाल तक, धैर्य व संयमपूर्वक, श्रद्धा-विश्वासपूर्वक चित्त में, आत्मा में ब्रह्म का ध्यान करते रहना चाहिए, जिससे कि हम भी इस दुर्लभ मनुष्य जीवन में ब्रह्मानंद की परम अनुभूति पाकर अपने जीवन को धन्य बना सकें। ❑

# आत्मविश्वास

यदि सशस्त्र पुलिस का जत्था साथ चल रहा हो तो घटाटोप अँधेरे एवं बीहड़ वन से गुजरते समय भी मन में निश्िंचतता का ही भाव होता है। सुरक्षा की सुनिश्चितता हो जाने पर व्यक्ति निर्भय और आश्वस्त होकर के यात्रा करता है। माँ का हाथ पकड़ने पर बालक के मन में भी कुछ इसी तरह की निडरता आ विराजती है।

जब माँ का हाथ बच्चे को और पुलिस का साथ एक वयस्क को सुरक्षा का भाव प्रदान कर सकते हैं तो जो ईश्वर पर, परमात्मा पर, सर्वशक्तिमान सत्ता पर विश्वास करता हो—उसके लिए क्या जीवनयात्रा निर्द्वंद्व एवं निस्पंद नहीं हो जाएगी?

स्पष्ट है कि ईश्वर पर पूर्ण भरोसा करने वाले को, उसे सदा अपने साथ अनुभव करने वाले को, उसकी सत्ता की उपस्थिति अपने भीतर विद्यमान महसूस करने वाले को भला किसका डर? किसके भीतर इतनी ताकत होगी कि वो ऐसे व्यक्ति के आत्मविश्वास को कमजोर कर सके?

परमात्मा के ऊपर अटूट विश्वास करने वाले को कभी भी आत्मविश्वास की कमी नहीं हो सकती। इसलिए यदि ऐसा कहा जाए कि आत्मविश्वास एवं ईश्वरविश्वास, एक ही सत्य के दो पहलू हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। दूसरे शब्दों में कहें तो अपने पर, अपनी संभावनाओं पर विश्वास करने वाला ही आस्तिक है; जबकि जो स्वयं पर, अपने भीतर उपस्थित महानता और संभावनाओं पर से आस्था खो बैठा है—उसे नास्तिक के अतिरिक्त कुछ और नहीं कहा जा सकता है।

आस्था के आधार को यदि एक क्षण को भुला भी दें तो क्या यह सत्य नहीं कि दुनिया भी उसी पर भरोसा करती है, जो स्वयं पर भरोसा करता है। जिसको अपने ऊपर ही भरोसा नहीं, वह दूसरों को क्या विश्वास दिला पाएगा? जो अपनी सहायता करते हैं, ईश्वर उन्हीं की सहायता करते हैं—लगभग प्रत्येक धर्मग्रंथ इसी सत्य को अलग-अलग शब्दों में दोहराते हैं।

ऐसा संभव है कि आत्मविश्वासी को प्रारब्धवश असफल होना पड़े, पर यह भी सत्य है कि कोई भी आत्मविश्वासहीन व्यक्ति आज तक बिना प्रयास के सफल नहीं हुआ है। इसे ऐसे भी कह सकते हैं कि संभव है कि किसी कुशल किसान की फसल खराब हो जाए, पर जिनको भी कृषि में लाभ मिला है, उनमें से प्रत्येक को खेत जोतने का श्रम तो करना ही पड़ता है।

इसी तरह आत्मविश्वास के बिना लौकिक व पारलौकिक जीवन में कोई सफलता संभव नहीं। इसे ही ईश्वरीय चेतना का सर्वोपरि उपहार कहा जा सकता है। ❑

---

**घोंसले में बैठे नन्हे-से परिंदे ने पर फड़फड़ाए और सहमकर जहाँ था, वहीं चिपककर बैठ गया। बच्चे को भयभीत देख माँ ने उसे घोंसले से धकेलते हुए कहा—''जब तक तू डरना नहीं छोड़ेगा, तुझे उड़ना कैसे आएगा।'' परिंदे ने हिम्मत जुटाई और दूसरे ही पल आकाश में उड़ गया। आत्मविश्वास के बिना कोई उपलब्धि प्राप्त नहीं होती।**

---

# परमपूज्य गुरुदेव का व्यवहार दर्शन

आज की दयनीय दुर्दशा से ग्रस्त शरीरबल और बुद्धिबल से हीन मानव को इस विपन्नता से छूटने का पथ–प्रदर्शन करने के लिए गुरुदेव एक व्यवहार दर्शन की तरह अवतरित हुए। वाणी और लेखनी से संभवत: वह कार्य संभव न हो पाता, जो उन्होंने अपना उदाहरण प्रस्तुत करके दिखा दिया। उनका जीवन दर्शन पग–पग पर इस सिद्धांत का प्रतिपादन करता है कि मनस्वी व्यक्ति हर परिस्थिति से जूझ सकता है और हर विपन्नता को पार करते हुए प्रगति के पथ पर निर्बाध रूप से गतिशील रह सकता है।

पैतृक दृष्टि से वे संपन्न परिवार में उत्पन्न हुए। दो हजार बीघे जमीन और अच्छी पूँजी उनके पिताजी छोड़ गए थे। यह सब संपदा मिलकर लाखों के बराबर होती थी। किले जैसा उनके पूर्वजों का मकान अभी भी जन्मभूमि में बना हुआ है, पर उस सबको लोक–मंगल के लिए दान करके उन्होंने स्वेच्छापूर्वक निर्धनता वरण की। पाँच–छह व्यक्तियों के परिवार के लिए 200 रुपये मासिक खरच की व्यवस्था बनाई और निभाई।

इस व्यय में लगभग आधा तो आगंतुक–अतिथियों में ही खरच हो जाता था परिवार खरच के लिए जो राशि बचती थी, उसमें बिना दूध–घी का सस्ते अन्न वाला भोजन तथा हाथ से धोकर, सीकर काम चलाने जितना वस्त्रों का जुगाड़ ही जम सकता था।

इस सादगी को वे स्वेच्छापूर्वक अपनाए रहे। संपन्नता को जान–बूझकर दुत्कार दिया। यह सब इसलिए करना पड़ा, ताकि लोगों को यह दिखाया जा सके कि निर्धनता किसी की प्रगति में बाधक नहीं हो सकती और यदि मनोबल ऊँचा रहे तो इतने स्वल्प साधनों से भी शारीरिक स्वास्थ्य और बौद्धिक उत्कर्ष का क्रम निर्बाध रूप से स्थिर रह सकता है।

संपन्नता उपयोगी भले ही हो, साधनों से सुविधा भले ही रहती हो, पर उनके अभाव में भी कुछ अवरोध उत्पन्न होने वाला नहीं है। शर्त एक ही है कि यदि आत्मबल अभिवर्द्धन की तैयारी कर ली गई है तो व्यक्ति का मनोबल ऊँचा रहे।

साठ वर्ष की आयु हो जाने पर उनके शरीर में न कोई विकार था, न शैथिल्य, अच्छे–खासे नवयुवक की तरह उनका शारीरिक–मानसिक श्रम पूरे उत्साह के साथ चलता रहता था। थकान का नाम नहीं। दवा के नाम पर एक पाई का खरच नहीं। लोग अक्सर मुझसे यह कहा करते, गुरुदेव इतना कठोर श्रम करते हैं, उनका स्वास्थ्य राष्ट्र की संपत्ति है।

उन्हें कुछ अच्छी खुराक मिलनी चाहिए अन्यथा वे इतना काम कैसे कर सकेंगे? बात मुझे भी जँच गई, सो एक दिन एक गिलास मौसमी का रस लेकर उनके पास पहुँची। पूछा गया यह क्या है? मैंने लोगों के तर्क दोहराते हुए मौसमी का रस उनकी ओर बढ़ाया।

वे उसे बिना छुए ही गंभीर हो गए। थोड़ी देर में देखा उनका गला रुँध गया और आँसुओं की धारा बहने लगी। मैं डर गई। सोचने लगी कोई बड़ी गलती हो गई। सकुचाते हुए कारण पूछा तो

उनने इतना ही कहा—''जिस निर्धन देश में हम रहते हैं और जिसके करोड़ों निवासियों को एक जून भोजन नहीं मिलता, उनके साथ जब हमारी ममता-आत्मीयता जुड़ी हुई है तो किस प्रकार संभव है कि हम वह बहुमूल्य भोजन करें, जो अपने इन पिछड़े कुटुंबियों को उपलब्ध नहीं है।''

फिर उन्होंने यह भी कहा—''हमारा अहं अपनी काया तक ही सीमित नहीं है, तुम सब अखण्ड ज्योति और गायत्री तपोभूमि के कार्यकर्त्ता यह सब मिलकर भी एक सौ से ऊपर हो जाते हैं। उनमें कई अस्वस्थ भी हैं, कई बालक भी हैं। जिन्हें हमारी अपेक्षा अधिक पौष्टिक आहार की आवश्यकता है। यदि उन्हें वह उपलब्ध नहीं कराया जा सकता तो हमारे लिए बहुमूल्य आहार कैसे ग्राह्य हो सकता है?

''हमें पौष्टिक आहार मिले यह उचित है, पर यह औचित्य तभी है, जब उतना उपभोग हम सब कर सकें। एकाकी खाना तो चोर का काम है। मैं चोर बनकर मौसमी का रस पीऊँ तो शरीर को कुछ लाभ मिल सकेगा या नहीं, मेरी आत्मा अवश्य दुर्बल हो जाएगी और वह हानि शरीर के दुर्बल, रुग्ण अथवा मृत हो जाने से भी अधिक गंभीर होगी।''

उनके कितने ही मित्र, शिष्य हम लोगों की स्वेच्छा वरण की हुई गरीबी को जानते थे, सो अक्सर फलों तथा वस्त्रों के उपहार लाते-भेजते रहते थे। भेजने वालों के सम्मान के लिए उन्हें रख जरूर लिया, पर उपभोग उसमें से एक कण का भी नहीं किया गया। फल कार्यकर्त्ताओं तथा बच्चों में बँट गए तथा कपड़े नवनिर्माण में संलग्न साथियों में काम आए। अपने लिए निर्धनों जैसी गरीबी ही सुरक्षित। दो सौ रुपयों में पाँच-छह व्यक्तियों का परिवार तथा अतिथियों का खरच किस तरह चल सकता है, इसकी चतुरता मुझे जितनी आती है, बहुत कम महिलाओं को उतनी आती होगी। सभ्य लोगों जैसा आवरण और किफायत का अंत, इन दोनों का तालमेल कैसे मिलाया जा सकता है, इस कला को सीखा जा सके तो कोई भी गृहिणी अपने परिवार को दरिद्र जैसा दिखने न देगी। ❑

**एक दिन देवलोक से विशेष विज्ञप्ति निकाली गई—''अमुक दिन सभी चित्रगुप्त से अपनी कुरूप वस्तुओं के बदले सुंदर वस्तुएँ प्राप्त कर सकते हैं। शर्त यही है कि वह विधाता की सत्ता में विश्वास रखता हो।'' निश्चित तिथि पर तीनों लोकों के निवासी विद्रूप वस्तुएँ लेकर देवलोक पहुँच गए। विधाता ने अंतर्दृष्टि से देखा कि सब आए या नहीं। उसने देखा कि शेष तो आ गए, केवल पृथ्वीलोक पर एक मनुष्य अपने आनंद में मग्न है।**

**विधाता ने पूछा—''भाई! तुम अपनी वस्तुएँ परिवर्तित करने क्यों नहीं गए?'' वह बोला—''भगवान की बनाई इस सृष्टि के कण-कण में वही तो व्याप्त है। फिर असुंदरता कैसे हो सकती है? मुझे तो इस सृष्टि का कण-कण सुंदर दिखाई देता है।'' विधाता मुस्कराए और चित्रगुप्त से बोले—''वस्तुतः यही वह व्यक्ति है, जो विधाता की सत्ता में विश्वास रखता है। जो सृष्टि को इसके समग्र रूप में स्वीकार करता है, उसके लिए सौंदर्य और कुरूपता का भेद नहीं रह जाता।'' विधाता की कृपा भी उसी मनुष्य को प्राप्त हुई।**

# निष्काम भक्ति की महिमा

भगवान को पाने का सबसे सहज व सरल मार्ग है भक्ति। भक्ति अर्थात भगवान के प्रति अगाध प्रेम, भगवान से असीम अनुराग, भगवान से निष्कपट, निश्छल, निष्काम प्रेम। निष्काम प्रेमी भगवान से कुछ नहीं चाहता। धन-दौलत, सुख-समृद्धि, ऋद्धि-सिद्धि, स्वास्थ्य-सौभाग्य कुछ भी नहीं। यहाँ तक कि मुक्ति, मोक्ष, निर्वाण, कैवल्य भी नहीं।

उसके प्रेम में कोई शर्त नहीं, बस, सिर्फ समर्पण है, संपूर्ण समर्पण है और इसके अलावा कुछ भी नहीं—इसीलिए तो उसकी भक्ति निष्काम है। उसकी कोई कामना नहीं, कोई इच्छा नहीं, कोई माँग नहीं। वह तो निश्छल है, निष्कपट है, निर्दोष है, निष्काम है, इसलिए वह भगवान से कुछ भी नहीं चाहता। वह तो बस, भगवान की भक्ति में हर पल रमा हुआ, डूबा हुआ रहना चाहता है। वह तो स्वयं को मिटाकर उनसे एकाकार होना चाहता है।

वह तो बस भगवान के प्रति प्रेम में पागल, प्रेम में मदहोश बने रहना चाहता है। वह तो उनके प्रति प्रेम में इतना पागल है, प्रेम में इतना मदहोश है, प्रेम में इतना डूबा है कि उसके मन में भगवान से भौतिक सुख-साधनों को पाने की कोई इच्छा उत्पन्न होगी भी कैसे?

भौतिक ही क्यों, उसके मन में कोई अभौतिक इच्छा भी तो नहीं है; क्योंकि जिस मन में ये इच्छाएँ उत्पन्न होती हैं, वह मन ही भगवत्प्रेम में डूब चुका होता है। वह तो प्रेम में मदहोश है, उसे भौतिक सुख-साधनों को पाने या माँगने का होश ही कहाँ है?

वह तो भगवान से प्रेम करता है; क्योंकि वह भगवान से एक पल भी जुदा नहीं रह सकता। वह तो भगवान के प्रेम में डूबकर अपने अस्तित्व को ही खोना चाहता है, स्वयं को मिटाना चाहता है या फिर कहें कि वह स्वयं के अस्तित्व को ही भगवान में खो चुका होता है, मिटा चुका होता है। फिर वह भगवान से कुछ माँगेगा भी क्यों और किसके लिए? उसका मन भगवान के प्रेम-सिंधु में बिंदु बन डूब चुका है, मिट चुका है।

इसलिए अब उसका अपना कुछ भी नहीं। भला सिंधु में, सागर में विलीन हो जाने के बाद सरिता का अपना अस्तित्व ही कहाँ रह जाता है? फिर सरिता सागर से कुछ क्यों, कैसे, किसलिए और किसके लिए माँगे? कुछ माँगना ही तो भगवान से मिलने में सबसे बड़ी बाधा है। कुछ माँगना, कुछ याचना, कुछ चाहना जब तक शेष है—तब तक भगवान से मिलन संभव नहीं, सरिता का सागर से मिलन संभव नहीं।

जब तक साधक में, भक्त में याचना है तब तक संपूर्ण समर्पण संभव नहीं और जब तक संपूर्ण समर्पण नहीं, तब तक परमात्मा से मिलना संभव नहीं; इसलिए भगवान की उपासना, साधना, आराधना एवं पूजा-पाठ, प्रार्थना, जप, तप, ध्यान, सुमिरन आदि क्रियाओं का एकमात्र आशय भी यही है कि हममें कोई चाहत, याचना, माँगना आदि का अवशेष मात्र भी न रह जाए; क्योंकि ये सभी कामनाएँ वो रस्सियाँ हैं, जिनसे बँधे होने के कारण सकाम भक्त भगवान के पास होते हुए भी

उनमें डूब नहीं पाता, उनके प्रेम में डूबकर अपना अस्तित्व मिटा नहीं पाता।

सकाम भक्त भगवान से कुछ पाने की इच्छा रखने के कारण अपने अस्तित्व को बनाए रखना चाहता है, इसलिए वह परमात्मसागर में उतर नहीं पाता, डूब नहीं पाता, मिट नहीं पाता। वह परमात्मसागर में सीधे छलाँग लगा देने के बजाय सागर के किनारे बैठकर परमात्मा से अपनी माँगों, इच्छाओं, कामनाओं की एक लंबी सूची साझा करता रहता है।

इसके विपरीत निष्काम भक्त, निष्काम प्रेमी, भगवान के प्रेम में पागल प्रेमी अपनी नियमित भगवद्भक्ति, भगवद्ध्यान, सुमिरन, स्मरण के अभ्यास से, प्रभाव से सभी प्रकार की कामनाओं, वासनाओं से मुक्त होकर परमात्मसागर में अपने किसी भी प्रकार के अस्तित्व की चिंता किए बिना सीधी छलाँग लगा देता है। ऐसे निश्छल, निर्दोष, निष्काम प्रेमीभक्त को ही भगवान श्रीकृष्ण अपना अतिशय प्रिय सर्वश्रेष्ठ ज्ञानीभक्त कहते हैं। गीता 7.16,17,18,19 में भगवान कहते हैं—

**चतुर्विधा भजन्ते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन।**
**आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी च भरतर्षभ॥**
**तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते।**
**प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः॥**
**उदाराः सर्व एवैते ज्ञानी त्वात्मैव मे मतम्।**
**आस्थितः स हि युक्तात्मा मामेवानुत्तमां गतिम्॥**
**बहूनां जन्मनामन्ते ज्ञानवान्मां प्रपद्यते।**
**वासुदेवः सर्वमिति स महात्मा सुदुर्लभः॥**

अर्थात हे भरतवंशियों में श्रेष्ठ अर्जुन! आर्त, जिज्ञासु, अर्थार्थी और ज्ञानी—ये चार प्रकार के भक्त मुझे भजते हैं। दुःख-संकट निवारण के लिए मुझे भजने वाला भक्त आर्तभक्त है। सांसारिक सुखभोग व पदार्थों को पाने की कामना से मुझे भजने वाला भक्त अर्थार्थी भक्त है। मुझे जानने की जिज्ञासा से भजने वाला भक्त जिज्ञासु भक्त है। आर्त, अर्थार्थी और जिज्ञासु—इन तीनों प्रकार के भक्तों की भक्ति किसी इच्छा, आकांक्षा, कामना को लेकर है अर्थात उनकी भक्ति सकाम है, पर ज्ञानीभक्त की कोई कामना नहीं, कोई इच्छा नहीं, कोई आकांक्षा नहीं।

वह तो निष्काम भाव से मेरी (ईश्वर की) भक्ति करता है। ज्ञानीभक्त मुझे छोड़कर कुछ नहीं चाहता। वह मेरे बगैर रह नहीं सकता। वह मुझसे जुदा रह नहीं सकता। उन सभी भक्तों में मुझमें नित्य एकीभाव से स्थित अनन्य प्रेम भक्तिवाला ज्ञानीभक्त अति उत्तम है और वह मुझे अतिशय प्रिय है।

भगवान कहते हैं कि वैसे सभी प्रकार के भक्त उदार हैं, पर ज्ञानीभक्त तो साक्षात् मेरा ही स्वरूप है; क्योंकि वह मुझमें अच्छी प्रकार स्थित है। ऐसा मेरा मत है। बहुत जन्मों के अंत के जन्म में तत्त्वज्ञान को प्राप्त पुरुष जो 'सब कुछ वासुदेव ही हैं'—इस प्रकार मुझको भजता है। वह महात्मा अत्यंत दुर्लभ है।

इस प्रकार भगवान ने ज्ञानीभक्त अर्थात निष्काम, निष्पाप, निश्छल, निष्कपट, निर्दोष भक्त को सर्वश्रेष्ठ, अति उत्तम, अतिशय प्रिय, अत्यंत दुर्लभ और अपनी आत्मा कहा है। ऐसे निष्काम, ज्ञानीभक्त के योगक्षेम का वहन भगवान स्वयं करते हैं।

ऐसे निष्काम प्रेमीभक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ पत्र, पुष्पादि सर्वव्यापी ब्रह्म, परमात्मा प्रीतिसहित ग्रहण करते हैं। निष्काम प्रेमीभक्त संसार में जो भी कर्म करता है, वह सभी कर्म भगवान को ही अर्पण होते जाते हैं। फलस्वरूप निष्काम भक्त सभी प्रकार के कर्मों के कर्म-बंधन से, कर्म-संस्कार से मुक्त होकर निस्संदेह भगवान को ही प्राप्त होते हैं। ऐसे निर्मल मन निष्काम, निश्छल भक्त के लिए ही तो भगवान श्रीराम ने कहा है—

**निर्मल मन जन सो मोहि पावा।**
**मोहि कपट छल छिद्र न भावा॥**

अर्थात जो मनुष्य निर्मल मन का होता है, वही मुझे पाता है; क्योंकि मुझे कपट और छल-छिद्र नहीं सुहाते।

इस प्रकार हम देखते हैं कि निष्काम प्रेम, निष्काम भक्ति की बड़ी अद्‌भुत महिमा है। निष्काम भक्ति ही भक्त को विवश करती है कि उसे भगवान से कम कुछ भी पसंद नहीं। निष्काम भक्ति ही भगवान को विवश करती है और भगवान को भक्त के निकट खींच लाती है। भक्ति भगवान को विवश कर देती है, बाध्य कर देती है—भक्त का आलिंगन करने को, उसे सँभालने को, उसे पालने को, उसे निहारने को, उसे पुचकारने को, उसे दुलारने को, उसे अपनी बाहों में भर लेने को।

सूर, तुलसी, मीरा, ध्रुव, प्रह्लाद, नामदेव, तुकाराम, एकनाथ, रामकृष्ण परमहंस आदि भक्तों की निष्काम भक्ति, निष्पाप प्रेम ने ही तो भगवान को विवश कर दिया था, बाध्य कर दिया था उन्हें सँभालने को, दुलारने को, पुचकारने को और अपने अंक में भर लेने को और उन्हें अपनी गोद में उठा लेने को।

निष्काम भक्ति का साधक जीवन के प्रत्येक कार्य में भी भगवत्पूजा ही कर रहा होता है; क्योंकि वह हर कर्म ही भगवान के प्रेम में, चिंतन में डूबा हुआ होकर, भगवान के लिए ही करता है। वह क्षण मात्र के लिए भी भगवत्प्रेम से, भगवच्चिंतन से जुदा नहीं हो सकता।

इस प्रकार वह हर पल कुछ करता हुआ एकमात्र भगवान की ही पूजा कर रहा होता है। उसका संसार में रहना भी, टिके रहना भी तो सिर्फ भगवान के लिए ही होता है। उसकी अपनी कोई इच्छा नहीं, आकांक्षा नहीं, कामना नहीं, वासना नहीं।

ऋद्धि-सिद्धि, मुक्ति, निर्वाण आदि कोई भी इच्छा, आकांक्षा नहीं, बल्कि एकमात्र भगवान की इच्छा की पूर्ति ही उसकी भक्ति का, उसकी साधना का ध्येय है। उसका हृदय भगवान के मधुर प्रेम से इतना भरा हुआ होता है, उसका हृदय भगवान से इतना भरा हुआ होता है कि वह सदा भगवान में और भगवान उसमें होते हैं। वह तो स्वयं को भगवान का उपकरण मात्र, यंत्र मात्र मानकर कर्म करता जाता है, भगवत्पूजा करता जाता है।

इसलिए वह स्वयं के इशारे पर नहीं, बल्कि सदा भगवान के इशारे पर ही चलता है। उसका सोना, जागना, हँसना, रोना, बोलना, करना आदि सब कुछ भगवान का और भगवान के लिए होता है। वह देहरूपी देवालयों में बैठा हो, देवालय में बैठा हो या जहाँ भी बैठा हो हमेशा देवालय में ही तो होता है; क्योंकि वह विश्व-ब्रह्मांड के कण-कण में, हर ओर, हर जगह परब्रह्म को ही अभिव्यक्त होते हुए अनुभव करता है और इसलिए वह हर पल अप्रतिम, अनुपम, अद्वितीय, आनंद का अनुभव करता रहता है।

यदि सचमुच ही भक्ति करनी है तो हम भी ऐसी ही भक्ति क्यों न करें? हम भी निष्काम भक्ति क्यों न करें? हम भी भगवान से निश्छल, निष्कपट प्रेम क्यों न करें? क्योंकि आखिरकार निश्छल, निष्कपट, निष्काम प्रेम ही तो परमानंद रूप परमात्मा को पाने का साधन है। ❑

---

**परोपकारशून्यस्य धिङ्मनुष्यस्य जीवितम्।**
**जीवन्तु पशवो येषां चर्माप्युपकरिष्यति॥**

*—सुभा० भांडा० 78/7*

***अर्थात—परोपकाररहित मनुष्य के जीवन को धिक्कार है, उसकी तुलना में तो पशु श्रेष्ठ है, जिसका कम-से-कम चमड़ा तो लाभकारी होता है।***

---

# यथार्थ की कसौटी पर विश्वास

**विगत अंक में आपने पढ़ा कि सत्तर के दशक के उत्तरार्द्ध में परमपूज्य गुरुदेव द्वारा ब्रह्मवर्चस शोध संस्थान की विधिवत् स्थापना की गई, जिसके अंतर्गत गायत्री की चौबीस महाशक्तियों की भी प्राणप्रतिष्ठा कुछ चुने हुए नैष्ठिक गायत्रीसाधकों के माध्यम से पूज्यवर के विशेष संरक्षण में संपन्न कराई गई। पूज्यवर ने गायत्री महाशक्ति के आवाहन व प्रतिष्ठापना का आध्यात्मिक प्रयोग संपन्न कराने के साथ ही जनमानस को दिशा देने वाली परिष्कृत बुद्धि के जागरण की व्यवस्था भी बनाई। भगवान वेदव्यास ने पुराणों की रचना वेदों के गुह्य ज्ञान को सुगम बनाने के लिए की थी, जिसकी प्रासंगिकता को वर्तमान समय के अनुरूप जीवंत व व्यावहारिक बनाने के उद्देश्य से पूज्यवर ने प्रज्ञा पुराण की रचना की। इस पुराण शृंखला को प्रज्ञा उपनिषद् भी कहा गया। पूज्य गुरुदेवकृत प्रज्ञा पुराण में पौराणिक शैली विस्तार और कथा प्रसंगों के साथ-साथ उपनिषद् शैली का भी समन्वय हुआ था और यही कारण था कि यह आमजनों सहित मनीषियों, बुद्धिजीवियों के लिए भी समान रूप से उपयोगी था। आइए पढ़ते हैं इसके आगे का विवरण .....**

मार्च, 1979 में गायत्री परिवार का रजत जयंती वर्ष चल रहा था। पिछले वर्ष गायत्री जयंती पर स्थानीय संगठनों, शाखाओं, शाखाओं के पुनर्गठन, कार्यक्रमों और दायित्वों के नए सिरे से निर्धारण के बारे में परिजनों ने अपने लिए युग-साधना का कोई-न-कोई अनुष्ठान चुन लिया था। गुरुदेव ने सार्वजनिक रूप से घोषित किया कि इस वर्ष क्षेत्रों में गायत्री परिवार की शाखाओं में कमाल की गतिविधियाँ चलीं।

शांतिकुंज के सभागार में नवरात्र-साधना के लिए आए साधकों को वर्ष प्रतिपदा पर नवरात्र के पहले दिन उन्होंने कहा कि इस बीच केंद्रीय स्तर पर भी तीन उपलब्धियाँ हुईं। गुरुदेव ने कहा कि ब्रह्मवर्चस आरण्यक में गायत्री शक्तिपीठ, ब्रह्म विद्यालय और शोध संस्थान की त्रिवेणी बहने लगी है। यह इस वर्ष की केंद्रीय उपलब्धि है। पहले उसे मात्र साधनाश्रम के रूप में बनाया गया था, अब उस गंगा ने त्रिवेणी का रूप ले लिया है। क्षेत्रीय स्तर पर आरंभ की जा रही स्थापनाओं में चौबीस गायत्री शक्तिपीठ हैं। आरंभ में इनकी संख्या चौबीस रहेगी। आगे इनकी संख्या बढ़ सकती है। ये कलेवर की दृष्टि से बहुत बड़े नहीं होंगे और न ही अनावश्यक रूप से खरचीले।

इस घोषणा में गुरुदेव ने स्पष्ट नहीं किया था कि किन स्थानों को गायत्री तीर्थों के लिए चुना जाएगा, पर इतना निश्चित है कि एक भी ऐसा स्थान नहीं बचेगा, जहाँ लोग तीर्थयात्रा के उद्देश्य से जाते हों। नवरात्र शिविर में आए साधकों के लिए यह सूचना अनूठी थी। प्राय: सभी साधक जानते थे कि भारत में विभिन्न तीर्थस्थानों पर पुराने, पौराणिक शक्तिपीठ हैं। उन शक्तिपीठों के संबंध में तरह-तरह के विश्वास और आस्थाएँ हैं। संख्या इक्यावन, बावन, बहत्तर या चौरासी जो भी हो, प्रत्येक स्थल पर पूजा-विधान और अलग-अलग परंपराएँ हैं।

ये शक्तिपीठ सती की अलग-अलग शक्तियों का प्रतिनिधित्व करते हुए साधकों में भी उन्हीं संभावनाओं को जाग्रत करते हैं। गायत्री शक्तिपीठों के बारे में सुनकर साधकों को स्पष्ट नहीं हुआ था कि वहाँ आत्मिक कल्याण का मार्ग कैसे मिलेगा या जनकल्याण कैसे सिद्ध होगा।

जिस शिविर में गुरुदेव ने घोषणा की उसमें कुछ विशिष्ट स्तर के साधक भी आए थे। इनमें एक तो वर्षों बाद गुरुदेव के पास पहुँचे थे। वे गुरुदेव से करीब सात-आठ साल पहले मथुरा में ही मिले थे। नाम था उनका—मुनि धर्मकाय। 1971 तक वे गायत्री परिवार के सक्रिय कार्यकर्त्ता थे। गुरुदेव अज्ञातवास जाने लगे तो कुछ दिन पहले एक विचित्र संदर्भ प्रस्तुत हुआ और वे परिवार से उपराम होकर साधना-उपासना में ही लग गए।

हुआ यह कि मथुरा से गुरुदेव की विदाई में तीन सप्ताह बाकी थे, धर्मकाय उनके पास सुबह-सुबह अखण्ड ज्योति संस्थान पहुँचे। कहने लगे गुरुदेव मैंने मिशन के काम को ही सब कुछ समझा है। पूजा, उपासना, जप, अनुष्ठान और आरती, स्तुति की ओर कभी मन नहीं गया। अब आप जा रहे हैं तो बताइए कि मुझे आगे भी यही सब करते रहना है अथवा आपने मेरे लिए कुछ और निश्चित किया हुआ है।

गुरुदेव के सामने धर्मकाय ने जो कुछ कहा, वह संक्षेप में और विनय से प्रेरित होने के कारण कम ही था। सत्रह-अठारह वर्ष की उम्र में उन्होंने अपने आप को पूरी तरह गुरुदेव के काम में लगा दिया था। गायत्री यज्ञों की विधि-व्यवस्था, जगह-जगह संस्कार आयोजन, विचार गोष्ठियाँ, गायत्री-साधना का प्रचार और लोगों से दुष्प्रवृत्तियाँ छुड़वाने, सत्प्रवृत्तियों के संकल्प कराने में दिन-रात जुटे रहे।

मुनि धर्मकाय ने न दिन देखा न रात और न घर देखा न बाहर। गायत्री परिवार का काम करते हुए उन्होंने परिवार को भी बाधा समझा और घर-गृहस्थी नहीं बसाई। 1971 से पहले तक, गुरुदेव के सामने किए उपरोक्त निवेदन के समय तक उनका नाम धर्मशील द्विवेदी था।

वे उत्तर प्रदेश में बनारस के पास किसी गाँव के रहने वाले थे। अपने बारे में कम ही चर्चा करते थे। इसलिए गाँव, घर-परिवार आदि की सूचनाएँ उपलब्ध नहीं हुईं। चर्चा करते भी कहाँ से, लोक जीवन और मिशन के कार्यकर्त्ताओं से भी उनका संपर्क लगभग टूट ही गया।

## मिशन से मुक्ति

उस दिन धर्मशील या धर्मकाय ने गुरुदेव से विदाई के बाद अपने लिए मार्ग पूछा तो लगा जैसे पहले से ही तय था। गुरुदेव ने कहा—"अब मैं तुम्हें मिशन के काम से मुक्त करता हूँ। तुम्हारे लिए मैंने नया क्षेत्र चुन रखा है। अब साधना-उपासना में लगो और आंतरिक जीवन का वैभव देखो, उसका साक्षात्कार करो।"

इसी प्रसंग में गुरुदेव ने कहा कि अब तुम धर्मशील नहीं रहे, धर्मकाय हो गए। मुनि धर्मकाय—जो लौकिक जीवन से उपरत होकर धर्म-साधना में ही प्रवृत्त हो। गुरुदेव के इस आदेश के बाद धर्मशील मथुरा से चले गए। वर्षों तक उनके बारे में किसी को पता नहीं चला। सन् 1978 में शांतिकुंज में वे पहली बार दिखाई दिए। संन्यासी की वेशभूषा में थे। नाम, रूप और वेश-विन्यास से उन्हें पहचानना मुश्किल था।

मथुरा से विदाई के आठ वर्ष बाद वे शांतिकुंज आए तो कुछ कार्यकर्त्ताओं ने उन्हें पहचाना। लेकिन वे कार्यकर्त्ताओं के नजदीक नहीं गए। जो उन्हें पहचानते थे, उनसे भी नहीं घुले-मिले। शिविर में उन्होंने शक्तिपीठों की घोषणा सुनी तो उनके चेहरे पर मुस्कान खिली। इस स्मित हास्य में व्यक्त हो रहा था कि जो कुछ उन्होंने सुना था, उसका आभास उन्हें जैसे पहले से रहा हो।

शिविर का पहला दिन बीतने के बाद मुनि धर्मकाय को अगले दिन गुरुदेव ने अपने पास बुलाया। सुबह साढ़े सात-आठ बजे के आस-पास का समय होगा। मथुरा से जाने के बाद अब तक मुनि धर्मकाय

ने क्या किया, क्या नहीं? इसका परिचय देने की जरूरत नहीं हुई। गुरुदेव को उनकी साधना, यात्रा, सफलता और बाधा आदि के बारे में सब कुछ पता था।

मुनि धर्मकाय गुरुदेव के पास जाकर बैठ गए। चरणवंदन और स्नेह प्रदर्शन का लौकिक उपक्रम पूरा हुआ। गुरुदेव ने इसके बाद कहा—''तुम्हें पता है न कि तुम्हारा पूर्व नाम धर्मशील था, इसलिए धर्मकाय का संबोधन नहीं मिला है।'' मुनि धर्मकाय ने गरदन हिलाकर विनयपूर्वक हामी भरी। नामकरण के समय उन्होंने वास्तव में नहीं सोचा था कि नया नाम क्यों दिया जा रहा है।

गुरुदेव ने कहा—''बौद्ध ग्रंथों के अनुसार प्राचीनकाल में भगवान बुद्ध से भी पहले धर्माकर नाम के एक भिक्षु थे, जो आगे चलकर लोकनाथ, अमिताभ या अवलोकितेश्वर कहलाए। शास्त्र कहते हैं कि वे दस कल्प पहले बुद्धत्व को प्राप्त हो चुके हैं। धर्माकर ने जब साधना आरंभ की तो संकल्प लिया कि संबोधि को प्राप्त होने के बाद बुद्धक्षेत्र नामक पवित्र और आनंदमयी नगरी का निर्माण करेंगे। इस नगरी का नाम सुखावती भी हो सकता है।''

''कोई साधक जब साधना करते-करते परिपक्व होने लगता है, किंतु किन्हीं कारणों से निर्वाण को प्राप्त नहीं होता तो सुखावती नगरी में निवास करता है। यहाँ रहकर वह अपनी मुक्ति की प्रतीक्षा करता है और तब तक सामान्य जीवों के कल्याण के लिए काम करता है।''

''वह प्रतीक्षारत साधक अमिताभ अथवा धर्माकर के साथ रहकर उत्कृष्ट श्रेणी के साधकों की सहायता करता है।'' गुरुदेव के कहते ही मुनि धर्मकाय को बोध हुआ। अभी तक वे गुरुदेव की बातें समाधिस्थ की तरह सुन रहे थे। सहज स्थिति में आते ही उन्होंने पूछा—''मुझे अब क्या करना है गुरुदेव? मैं जानता हूँ कि आपने अवलोकितेश्वर स्तर की जिस स्थिति का उल्लेख किया है, मैं उसके आस-पास भी नहीं हूँ।''

गुरुदेव ने कहा—''तुम यहाँ स्वयं अपने आप नहीं आए, बुलाए गए हो। यह तो जानते ही हो। तुम्हारा नाम धर्मकाय इसलिए रखा गया था कि तुम ऐसे क्षेत्र बनाने की तैयारी करो, जहाँ संस्कारवान आत्माओं को विश्राम और ऊर्जा मिले।''

''समझा गुरुदेव!'' मुनि धर्मकाय ने कहा—''आप शक्तिपीठों के बारे में कह रहे हैं। अपनी स्थिति और योग्यता के बारे में मैं स्वयं क्या कहूँ? आप आदेश दें। मुझे यह तो समझ में आया है कि आप नए तीर्थों की स्थापना करने जा रहे हैं, उसमें मुझे क्या करना है।''

''तुम्हें तीर्थशिल्पी की भूमिका में रहना है। तुम्हारी तरह तेईस और साधक वर्षों से इस काम के लिए अपने आप को तैयार कर रहे हैं। श्रेय और प्रेय के आकर्षण से मुक्त होकर वे भी इसी साधना में निरत होंगे। सामाजिक कर्मों से उनका सरोकार नहीं रहेगा।'' —गुरुदेव ने कहा।

धर्मकाय ने इन निर्देशों या संकेतों को ध्यानपूर्वक सुना और कहा—''मुझे तो आदेश दीजिए गुरुदेव बस, ज्यादा कुछ नहीं जानना।'' कहते हुए धर्मकाय ने गुरुदेव के चरणों में सिर रख दिया। उनका स्नेहिल स्पर्श पाकर धर्मकाय उठकर चले आए।

कुछ और भी परिजन थे, जो उस शिविर में या शिविर के बाद धर्मकाय की तरह सामने आए। वे मिशन के प्रचार और रचनात्मक कामों से अलग होकर साधना-उपासना में ही रत रहते। इन साधकों में एक थे सत्यानंद सरस्वती।

संन्यासी थे और गाहे-बगाहे गायत्री परिवार के यज्ञ सम्मेलनों में जाया करते थे। गुरुदेव के संपर्क में वे संन्यासी होकर ही आए थे। उनके गुरु स्वामी कृष्णतीर्थ किसी समय गृहस्थ अवस्था में गुरुदेव के शिष्य रहे थे, लेकिन गायत्री परिवार के कार्यक्रमों में सक्रिय नहीं थे। (क्रमशः)

# बच्चों की समस्या का यौगिक निदान

बच्चों में होने वाली एक विशेष समस्या, जिसे डिस्लेक्सिया कहा जाता है—यह एक तरह से बच्चों में पढ़ने-सीखने की समस्या है। लर्निंग डिसऑर्डर अथवा सीखने की समस्या से जुड़े विभिन्न अध्ययन एवं शोध यह दरसाते हैं कि पाँच से दस प्रतिशत बच्चों में यह समस्या होती है, परंतु इसका पता बच्चा जब थोड़ा बड़ा हो जाता है या विद्यालय जाने लगता है, तभी लग पाता है। पढ़ने, बोलने, लिखने, सीखने की समस्या के आधार पर इसकी पहचान हो पाती है।

डिस्लेक्सिया एक तरह से न्यूरोलॉजिकल डिसऑर्डर या तंत्रिका तंत्र से जुड़ी समस्या है। इसे डेवलपमेंटल रीडिंग डिसऑर्डर भी कहा जाता है। बच्चों में सामान्य रूप से शारीरिक स्तर पर तो इस समस्या के कोई लक्षण नहीं दिखाई देते, परंतु जब उनमें बोलने, सीखने व भाषा संबंधी समस्या दिखाई देती है, तभी इस बीमारी का निदान हो पाता है।

विशेषज्ञों की राय में इसका मुख्य कारण कॉर्पस कैलोसम अर्थात जन्मजात मस्तिष्क दोष जैसे—मस्तिष्क के दाएँ एवं बाएँ भाग को जोड़ने व इनमें पारस्परिक संचार-प्रक्रिया की संरचना में गड़बड़ी होना है। इसके अतिरिक्त मस्तिष्क की चोट, स्ट्रोक अथवा अन्य आघात भी इस बीमारी का कारण हो सकते हैं।

डिस्लेक्सिया से प्रभावित बच्चों में मानसिक गतिविधियाँ भले ही असामान्य दिखाई देती हैं, किंतु यह कोई मानसिक रोग नहीं है। कई बार ऐसे बच्चों की बौद्धिक क्षमता अथवा आईक्यू औसत से ज्यादा भी हो सकती है। इस समस्या से ग्रस्त बच्चे आधुनिक गैजेट को कुशलता से चलाते, चित्रकारी, संगीत आदि में अच्छा प्रदर्शन करते देखे जा सकते हैं। यद्यपि इस बीमारी का वैज्ञानिक रीति से कोई संपूर्ण उपचार अभी तक उपलब्ध नहीं है, तथापि इसके समुचित प्रबंधन के उपाय अवश्य हैं, जैसे स्वर अथवा ध्वनि संकेत, मनोचिकित्सा, औषधि, अतिरिक्त शिक्षण, प्रेरणा एवं सकारात्मक व रचनात्मक गतिविधियों द्वारा समस्याग्रस्त बच्चों को इसके दुष्प्रभावों से बचाकर सामान्य जीवन जीने में सहायता की जा सकती है।

उल्लेखनीय है कि देव संस्कृति विश्वविद्यालय के नैदानिक मनोविज्ञान विभाग के अंतर्गत बच्चों में डिस्लेक्सिया की समस्या के उपचार एवं प्रबंधन की दृष्टि से एक महत्त्वपूर्ण शोध अध्ययन विगत दिनों संपन्न कराया गया है। इस प्रायोगिक शोध अध्ययन की विशेषता यह है कि इसमें मनोचिकित्सा, योग चिकित्सा और आयुर्वेदिक चिकित्सा—इन तीनों उपचार-पद्धतियों की विशिष्ट तकनीकों एवं पहलुओं का सम्मिलित प्रयोग कर सार्थक एवं सकारात्मक परिणाम प्राप्त किए गए हैं।

यह विशेष शोध अध्ययन शोधार्थी ऋचा पाण्डे द्वारा वर्ष—2016 में मनोविज्ञान विषय के अंतर्गत संपन्न किया गया। शोधार्थी ने अपना यह शोध विश्वविद्यालय के श्रद्धेय कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या जी के विशेष संरक्षण एवं डॉ० प्रज्ञा राणा के निर्देशन व डॉ० पी० एस० उपाध्याय के सहनिर्देशन में पूरा किया है। इस शोध का शीर्षक

है—**'प्रोब्लम्स ऑफ डिस्लेक्सिक चिल्ड्रन एंड देयर मैनेजमेन्ट थ्रो साइकोयोगिक-आयुर्वेदिक पैकेज।'**

शोधार्थी द्वारा शोध के प्रयोगात्मक कार्य को पूरा करने के लिए उत्तर प्रदेश के बरेली शहर के अँगरेजी माध्यम विद्यालयों से कोटा प्रतिचयन विधि द्वारा 50 ऐसे बच्चों का चयन किया गया, जो डिस्लेक्सिया की समस्या से ग्रस्त थे और जिनकी आयु 8 से 11 वर्ष के मध्य थी। प्रयोग प्रारंभ करने से पूर्व सभी चयनित बच्चों का शोध उपकरणों द्वारा स्वास्थ्य परीक्षण किया गया।

परीक्षण हेतु जिन उपकरणों को प्रयुक्त किया गया, वे हैं—आनंद कुमार द्वारा प्रयुक्त 'सेल्फ स्टीम इन्वेंट्री फॉर चिल्ड्रन (SEIC)(IA) (1988), सीमा रानी एवं बसंत बहादुर सिंह (2008) द्वारा प्रयुक्त 'स्ट्रेस इन्वेंट्री फॉर स्कूल स्टूडेंट' तथा स्मृतिस्वरूप एवं धर्मिष्ठा एच मेहता द्वारा प्रयुक्त (2011) 'डायग्नोस्टिक टेस्ट ऑफ रीडिंग डिसऑर्डर (DTRD)।

परीक्षण के उपरांत 45 दिनों तक की अवधि में शोधार्थी द्वारा चयनित मनोवैज्ञानिक, यौगिक व आयुर्वेदिक उपचार प्रदान किया गया। शोधार्थी द्वारा स्वयं ही यह उपचार प्रदान किया गया। शोधार्थी द्वारा उपचार एवं प्रबंधन प्रक्रिया में तीनों चिकित्सा प्रणालियों में से जिन तकनीकों का उपयोग किया गया, वे हैं—

**(i) मनोवैज्ञानिक परामर्श**—इसमें प्रत्येक बच्चे की प्रतिसप्ताह 30 मिनट व्यक्तिगत काउंसलिंग की गई एवं 30 मिनट प्रतिमाह परिवार एवं शिक्षकों की काउंसलिंग की गई। इसके साथ ही खेल चिकित्सा को भी सम्मिलित किया गया, जिसमें बच्चों से स्क्रेबल, गेम्स, पजल, चित्रकारी आदि में भागीदारी सुनिश्चित की गई।

**(ii) यौगिक तकनीकों** के अंतर्गत 10 मिनट नियमित सिंहासन एवं भ्रामरी प्राणायाम का योगाभ्यास कराया गया।

**(iii) आयुर्वेदिक औषधि**—इसके अंतर्गत 45 दिनों तक ब्राह्मी, शंखपुष्पी और वच औषधि से निर्मित मिश्रण का 30 से 100 ग्राम गाय के दुग्ध के साथ प्रयोगकाल की अवधि में नियमित सेवन कराया गया। ये औषधियाँ स्वयं शोधार्थी द्वारा हरिद्वार से प्राप्त कर साफ एवं सुखाकर तैयार किए गए सम्मिश्रण से बनाई गई थीं।

प्रयोग की अवधि समाप्त होने पर पूर्व की भाँति पुनः सभी चयनित बच्चों का स्वास्थ्य परीक्षण किया गया। प्रथम एवं द्वितीय परीक्षण एवं अन्य प्रक्रियाओं से प्राप्त आँकड़ों का सांख्यिकीय विश्लेषण करने पर शोध परिणाम के रूप में यह पाया गया कि शोध में प्रयुक्त चिकित्सा तकनीकों के सम्मिलित समूह का डिस्लेक्सिक बच्चों के स्वास्थ्य पर सार्थक एवं सकारात्मक प्रभाव पड़ता है।

इस प्रयोग के परिणामों में देखा गया कि बच्चों में पढ़ने की क्षमता पहले की तुलना में ज्यादा विकसित हुई है, एकाग्रता में वृद्धि, तनाव में कमी और आत्मविश्वास व समझने की क्षमता में वृद्धि हुई है। इसके साथ ही बच्चों के परिवार और शिक्षकों का सहयोगात्मक व्यवहार भी शोध के सार्थक परिणामों का एक महत्त्वपूर्ण पहलू है।

इस शोध अध्ययन का सबसे महत्त्वपूर्ण और उपादेयी पक्ष है शोधार्थी द्वारा डिस्लेक्सिया के प्रबंधन हेतु चयनित की गई चिकित्सा तकनीकें। मनोवैज्ञानिक, यौगिक और आयुर्वेद—ये तीनों ही स्वतंत्र रूप से विशिष्ट और प्रभावकारी कारगर पद्धतियाँ हैं। इस शोध में इन तीनों को संयुक्त कर जो चिकित्सा प्रारूप बनाया गया है, वह ही शोध परिणामों की सार्थकता और सकारात्मकता का मूल कारण है।

इस प्रारूप की पहली तकनीक मनोवैज्ञानिक परामर्श है। परामर्श एक मनोवैज्ञानिक विशेषज्ञता है, जिसमें सामने वाले व्यक्ति को जीवन विकास, स्वास्थ्य अथवा समस्या समाधान की दृष्टि से समुचित प्रेरणाओं का निर्देशन किया जाता है। इसमें परामर्शदाता वार्त्तालाप एवं व्यवहार के माध्यम से व्यक्ति की मानसिक स्थिति को समझते हैं तथा समस्याओं से उबरने के श्रेष्ठतम उपाय प्रदान करते हैं।

इस शोध में शोधार्थी द्वारा बच्चों को जो परामर्श चिकित्सा प्रदान की गई, उसका शोध परिणाम पर अत्यंत व्यापक और सार्थक प्रभाव पड़ा है। परामर्श देने से बच्चों में आत्मविश्वास, सीखने की क्षमता में वृद्धि हुई और परिवारजनों ने भी बच्चों के पढ़ने, सीखने एवं बोलने की समस्या को समझकर उन्हें सहायता प्रदान की।

अध्ययन की दूसरी तकनीक है—यौगिक अभ्यास। इसके अंतर्गत शोधार्थी द्वारा एक आसन एवं प्राणायाम को अपने प्रयोग में सम्मिलित किया गया है। यह सर्वविदित है कि योग का संपूर्ण स्वास्थ्य एवं व्यक्तित्व पर सकारात्मक प्रभाव पड़ता है। इस प्रयोग में बच्चों को सिंहासन एवं भ्रामरी प्राणायाम का अभ्यास कराया गया, जिसके फलस्वरूप उनमें एकाग्रता, तनाव में कमी और बाह्य वातावरण से समायोजन की क्षमता का विकास होता है।

अध्ययन की तीसरी प्रक्रिया आयुर्वेदिक औषधि का सेवन है। इस प्रयोग में ब्राह्मी, शंखपुष्पी और वच नामक औषधि का सम्मिश्रण बनाकर बच्चों को सेवन कराया गया, जिससे उनकी स्मृति वृद्धि, शब्दों के उच्चारण एवं स्पष्टता में वृद्धि तथा अध्ययन-क्षमता में विकास पाया गया। मस्तिष्क की क्षमताओं का विकास, स्नायुतंत्र की मजबूती एवं बौद्धिक क्षमता के विकास में ब्राह्मी और शंखपुष्पी को आयुर्वेद चिकित्सा जगत् में अत्यंत प्रभावी औषधि के रूप में प्रयुक्त किया जाता है। इसी महत्ता के कारण इस शोध में उक्त दिव्य औषधियों को सम्मिलित कर सार्थक परिणाम प्राप्त किए गए हैं।

इस अध्ययन के परिणामों के आधार पर यह स्पष्ट है कि शोधार्थी द्वारा निर्मित उपचार-प्रक्रिया डिस्लेक्सिया से ग्रस्त बच्चों की समस्या के समाधान एवं प्रबंधन हेतु एक अत्यंत प्रभावी, व्यापक और कारगर उपाय है।

इस उपचार-प्रक्रिया को अपनाने से समस्या के समाधान के साथ-साथ अन्य सकारात्मक और स्थायी लाभ भी बच्चों को सहज प्राप्त हो जाते हैं, जिससे संपूर्ण व्यक्तित्व विकसित हो पाता है। साथ ही अँगरेजी उपचार-विधियों के 'साइड इफेक्ट' की तरह इस उपचार-प्रक्रिया का कोई दुष्परिणाम भी नहीं है। यह पूरी तरह सुरक्षित, दुष्प्रभावरहित और प्रभावी उपचार-प्रक्रिया है, जिसे अपनाकर डिस्लेक्सियाग्रस्त बच्चों के जीवन को सामान्य, सहज और समुन्नत बनाया जा सकता है। ❑

---

**सूर्य का प्रकाश लेकर दो किरणें चलीं। एक कीचड़ में गिरी तो दूसरी पास उग रहे कमल के फूल पर। जो किरण कमल पर गिरी, वह दूसरी से बोली—''देखो! जरा दूर ही रहना। मुझे छूकर कहीं अपवित्र न कर देना।'' कीचड़ वाली किरण यह सुनकर हँसी व बोली—''बहन! जिस सूर्य का प्रकाश हम दोनों लेकर चली हैं, उसे सारे संसार में अपना प्रकाश भेजने में संकोच नहीं है तो यह आपस में मतभेद कैसा ? और फिर यदि हम ही इस कीचड़ को नहीं सुखाएँगे तो इस पुष्प को उपयोगी खाद कैसे मिल सकेगी ?'' दूसरी किरण अपने दंभ पर लज्जित ही हो सकती थी।**

---

# विलुप्त हो रहे भोजवृक्षों का हो संरक्षण

हिमालय की ऊँचाइयों में उगने वाला भोजवृक्ष बर्च परिवार का एक अहम सदस्य है, जिसे हिमालयन बर्च का नाम दिया गया है। संस्कृत में इसे भूर्ज कहा जाता है। एशिया, उत्तरी अमेरिका और यूरोप में उगने वाले अनेक प्रकार के भूर्जवृक्षों की छाल को भोजपत्र कहते हैं।

इस तरह भोजपत्र भोज नाम के वृक्ष की छाल का नाम है, पत्ते का नहीं। इस वृक्ष की छाल कागजी परत की तरह पतले-पतले छिलकों के रूप में निकलती है, जो सफेद से लेकर भूरा रंग लिए होती है। कागज की खोज से पहले हमारे पूर्वज भोजपत्र पर ही लिखने का काम करते थे।

प्राचीन भारत में ग्रंथों के लेखन में इनको कागज की तरह उपयोग करते हुए पांडुलिपियाँ तैयार की जाती थीं और तंत्र-साधना में इनका उपयोग होता था। कालिदास ने अपनी रचनाओं में भोजपत्र का वर्णन कई स्थानों पर किया है। आज भी कई पुरातन शोधस्थलों एवं पुस्तकालयों में भोजपत्र पर लिखी हुई पांडुलिपियाँ सुरक्षित हैं, जिनका उपयोग पवित्र मंत्रों के लेखन में किया जाता है।

विश्व में इसकी कुछ किस्मों को लैंडस्केपिंग के लिए प्रयुक्त किया जा रहा है, हालाँकि कई क्षेत्रों में लकड़ी व चारे के लिए उसके अत्यधिक उपयोग के चलते यह विलुप्ति के कगार पर है। मध्यम आकार का इसका वृक्ष 20 मीटर की ऊँचाई तक विकसित होता है व 4500 मीटर की ऊँचाई तक उगता है। यह प्राय: छितरे हुए शंकुधारी (कोनिफर) वृक्षों के बीच सदाबहार, बुराँश आदि के पौधों के साथ पाया जाता है।

यह पेड़ मानसून की बारिश की नमी पर नहीं, बल्कि पिघली हुई बरफ की नमी पर निर्भर रहता है। हिमालय में भारी बरफ के दबाव के नीचे पनपने के कारण यह कुछ झुकाव लिए होता है। भोजवृक्ष कई रूपों में मानव के लिए उपयोगी है। यह चिकित्सकीय उपयोग के लिए भी जाना जाता है। इसका उपयोग दमा व मिरगी जैसे रोगों के उपचार में किया जाता है।

इसकी छाल एस्ट्रिंजट अर्थात कसावट लाने वाली मानी जाती है। इस कारण बहते रक्त और घावों को साफ करने में इसका प्रयोग होता है। इसके रेशों की लुगदी का टिकाऊ कागज भी बनता है। इसकी लकड़ी का उपयोग ड्रम, सितार, गिटार आदि बनाने में भी किया जाता है।

बेलारूस, फिनलैंड, स्वीडन और डेनमार्क, उत्तरी चीन में बर्च के रस का उपयोग पेय के रूप में होता है। इससे जाइलिटाल नामक अल्कोहल भी मिलता है, जिसका उपयोग मिठास के लिए होता है, लेकिन आज इस दुर्लभ एवं बेशकीमती वृक्ष का अस्तित्व खतरे में है।

जलवायु-परिवर्तन और पेड़ों के कटने से हिमालय में पाई जाने वाली कई वनस्पतियाँ खतरे की जद में आ गई हैं, जिनमें भोजवृक्ष भी शामिल है। अब यह पेड़ अतिदुर्लभ हो चला है व इसके जंगल सिमटते जा रहे हैं। विशेषज्ञों के अनुसार— यदि हालात ऐसे ही रहे तो अगले दिनों ये पेड़ केवल कल्पनाओं व इतिहास के पन्नों में ही सिमटकर रह जाएँगे।

जलवायु-परिवर्तन के साथ अनावश्यक मानवीय हस्तक्षेप भी इसके लिए जिम्मेदार रहा है। विकास के नाम पर जिस तरह से प्रकृति का अंधाधुंध दोहन हो रहा है, औद्योगिक विकास हो रहा है, इससे संवेदनशील हिमालयी क्षेत्रों के लिए एक बड़ा खतरा उत्पन्न हो रहा है।

आज ट्री लाइन सिकुड़ती जा रही है, बुग्याल सिमटते जा रहे हैं, ग्लेशियर पीछे खिसकते जा रहे हैं, इससे भोजपत्र जैसी उच्च हिमालय में पनपने वाली वनस्पतियाँ व पेड़ खतरे की जद में आ गए हैं। मानवीय हस्तक्षेप व जलवायु की दोहरी मार इन पर भारी पड़ रही है और ये विनाश के कगार पर हैं।

अभी भोजपत्र के दुर्लभ वृक्ष उत्तराखंड के भोजवासा और मदमहेश्वर धाम के ऊपरी क्षेत्रों में सीमित मात्रा में दिखाई दे रहे हैं, इसी तरह हिमाचल की रोहतांग घाटी व लाहौल घाटी में ही इनके अवशेष बचे हैं। पर्यावरण वैज्ञानिक इनकी स्थिति पर चिंता जता रहे हैं कि इनके विशेष संरक्षण की आवश्यकता है, वरना ये विलुप्त हो जाएँगे।

इनके संरक्षण एवं संवर्द्धन के संदर्भ में प्रख्यात पर्वतारोही एवं पर्यावरणविद् डॉ० हर्षवंती बिष्ट के प्रयास स्तुत्य एवं अनुकरणीय हैं, जिन्होंने पहली भोजपत्र नर्सरी सन् 1993 में गंगोत्तरी के कुछ आगे चीड़बासा में तैयार की व गंगोत्तरी राष्ट्रीय पार्क में हजारों भोजपत्र पौधों का रोपण किया। पर्वतारोहण के दौरान जब डॉ० हर्षवंती बिष्ट नब्बे के दशक में इस क्षेत्र से गुजरी थीं तो भोजवासा बंजर दिखा था।

जिन भोजवृक्षों के जंगल के कारण इस जगह का नाम भोजवासा पड़ा था, वहाँ इनके केवल ठूँठ शेष रह गए थे। इससे व्यथित होकर इन्होंने सन् 1989 में सेव गंगोत्तरी प्रोजेक्ट प्रारंभ किया। सन् 1992 से 1996 तक दस हेक्टेयर भूमि में लगभग साढ़े बारह हजार भोजवृक्षों की पौध लगाई गईं—जिनमें आज अधिकतर पेड़ बन गए हैं।

आज इनमें पक्षी चहचहा रहे हैं, पेड़ों पर उनके घोंसले हैं, वहाँ भरल नाम की जंगली बकरियों से लेकर स्नोलेपर्ड जैसे वन्यजीव पनप रहे हैं। इस तरह विश्व में विलुप्त हो रहे भोजपत्र के पेड़ आज हिमालय की वादियों में लहलहा रहे हैं।

भोजपत्र के पेड़ कभी गंगोत्तरी के आगे गोमुख पैदल मार्ग पर चीड़वासा और इससे ऊपरी क्षेत्र में दिखाई देते थे। वहीं अब ये वृक्ष 11 किमी नीचे गंगोत्तरी नेशनल पार्क के गेट कनखू बैरियर के पास देवगाड़ में भी दिखाई दे रहे हैं। इसमें गंगोत्तरी ग्लेशियर की सुरक्षा के लिए वर्ष—2008 में लगाए गए कड़े सरकारी प्रतिबंधों का भी योगदान रहा है, जिसने तीर्थयात्रियों व पर्यटकों की संख्या 150 प्रतिदिन तक सीमित कर दी थी।

---

**तेन ज्ञान फलं प्राप्तं योगाभ्यास फलं तथा।**
**तृप्तः स्वच्छेन्द्रियो नित्यमेकाकी रमते तु यः॥**

*—अष्टावक्र गीता, 17/1*

***अर्थात जो पुरुष नित्य है, तृप्त है, शुद्ध इंद्रियोंवाला और सदा अकेला रमण करने वाला है, उसी को ज्ञान एवं अभ्यास का फल प्राप्त होता है।***

---

भोजपत्रों की संख्या में यह वृद्धि हिमालय के पर्यावरण और जैव-विविधता के लिए लाभदायक है। ऐसे ही प्रयास विश्व में हर उस जगह में अपेक्षित हैं, जहाँ की आबोहवा इसके विकास के लिए उपयुक्त है।

साथ ही इस क्षेत्र में विचरण करने वाले हर तीर्थयात्री, पर्यटक एवं क्षेत्रीय परिजनों से उच्च हिमालय के इन पावन क्षेत्रों में प्रकृति के साथ श्रद्धा, सम्मान एवं सहयोग भरे भाव के साथ रहने की अपेक्षा की जाती है, जिससे कि इन दुर्लभ वृक्षों एवं अन्य वनस्पतियों का विकास निर्बाध रूप से हो सके व यहाँ की जैव-विविधता हिमालय के परिवेश को और अधिक समृद्ध कर सके। ❑

युगगीता — 271

# शास्त्रीय कर्मों के भेद
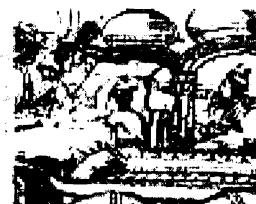
*(श्रीमद्भगवद्गीता के श्रद्धात्रयविभागयोग नामक सत्रहवें अध्याय की छठी किस्त)*

**[ श्रीमद्भगवद्गीता के सत्रहवें अध्याय के पाँचवें एवं छठे श्लोक पर चर्चा इससे पूर्व की किस्त में की गई थी। इन दोनों श्लोकों में श्रीभगवान कहते हैं कि जो मनुष्य शास्त्रविधि से रहित होकर घोर तप करते हैं, जो दंभ और अहंकार से अच्छी तरह से युक्त हैं, जो भोग पदार्थ, आसक्ति और हठ से युक्त हैं, जो शरीर में स्थित पाँच भूतों को अर्थात पांचभौतिक शरीर को तथा अंतःकरण में स्थित मुझ परमात्मा को भी कृश करने वाले हैं—उन अज्ञानियों को तू आसुरी निष्ठा वाला समझ। यह एक महत्त्वपूर्ण वचन है; क्योंकि यहाँ भगवान यह स्पष्ट कर रहे हैं कि हर तपस्वी की निष्ठा सात्त्विक नहीं होती; बल्कि ऐसे भी व्यक्तित्व होते हैं जो शास्त्रीय विधि से, संस्कार विधि से च्युत होते हैं, परंतु तब भी घोर तप में निरत रहते हैं; क्योंकि उनकी अभिरुचि शक्तिसंग्रह में होती है। न तो वे स्वयं ईश्वरीय व्यवस्था को मानते हैं और न ही कोई दूसरा उसका पालन करना चाहता है तो वे उसे करने देते हैं। इसीलिए रावण ने जब तपस्या के बाद त्रिलोक पर अधिकार कर लिया तो उसके बाद उसने दैवी व्यवस्था को भी मानने से इनकार कर दिया। न तो वह स्वयं ही भगवान को मानता था और न ही उसके राज्य में यदि कोई और भगवान का नाम लेता था तो वह उसे भक्ति के पथ का पालन करने देता था। इसीलिए तो उसने विभीषण को लात मारकर राज्य से निकाल दिया था। इसी तरह से हिरण्यकशिपु भी भगवान की पूजा करने वाले के प्रति क्रोधित हो उठता था; जबकि रावण व हिरण्यकशिपु, दोनों ही तपस्वी थे। इसीलिए श्रीभगवान कहते हैं कि ऐसे व्यक्ति करते तो घोर तप हैं, परंतु वह अशास्त्रविहित अर्थात शास्त्रविरुद्ध होता है; क्योंकि उनका भाव तामसिक होता है और उनका उद्देश्य मात्र शक्ति का अर्जन करना और फिर उस शक्ति का उपयोग अहंकार के प्रदर्शन के लिए करना होता है। ऐसे व्यक्ति फिर दंभी, अहंकारी और हठी हो जाते हैं। श्रीभगवान ऐसे व्यक्तियों की निष्ठा को आसुरी स्वभाव वाली निष्ठा बताते हैं; क्योंकि उनके लिए तपस्या भी अहंकार के प्रदर्शन का ही माध्यम होती है। ऐसे व्यक्तियों के लिए फिर इंद्रियों को कष्ट देना, उन्हें कृश करना ही तपस्या का उद्देश्य बन जाता है। भगवान कहते हैं कि ऐसी तपस्या शास्त्रविरुद्ध है। ]**

इसके बाद वे कहते हैं कि

**आहारस्त्वपि सर्वस्य त्रिविधो भवति प्रियः।**
**यज्ञस्तपस्तथा दानं तेषां भेदमिमं शृणु॥ 7॥**

**शब्दविग्रह**—आहारः, तु, अपि, सर्वस्य, त्रिविधिः, भवति, प्रियः, यज्ञः, तपः, तथा, दानम्, तेषाम्, भेदम्, इमम्, शृणु।

**शब्दार्थ**—भोजन **( आहारः )**, भी **( अपि )**, सबको (अपनी-अपनी प्रकृति के अनुसार) **( सर्वस्य )**, तीन प्रकार का **( त्रिविधः )**, प्रिय **( प्रियः )**, होता है। **( भवति )**, और **( तु )**, वैसे ही **( तथा )**, यज्ञ **( यज्ञः )**, तप (और) **( तपः )**, दान (भी तीन-तीन प्रकार के होते हैं) **( दानम् )**, उनके **( तेषाम् )**, इस (पृथक-पृथक) **( इमम् )**, भेद को (तू मुझसे) **( भेदम् )**, सुन **( शृणु )**।

अर्थात आहार भी सबको तीन प्रकार का प्रिय होता है और वैसे ही यज्ञ, तप और दान भी तीन प्रकार के होते हैं अर्थात शास्त्रीय कर्मों में भी गुणों को लेकर तीन प्रकार की रुचि होती है। तू उनके इस भेद को सुन।

**▶'नारी सशक्तीकरण' वर्ष◀**

यहाँ श्रीभगवान एक बहुत ही गंभीर बात कह रहे हैं। पहले तो उन्होंने यह कहा कि हर व्यक्ति का व्यक्तित्व उसके अंत:करण में निहित भाव के अनुरूप होता है। जिसके अंत:करण में जैसा भाव होता है, वैसी ही उसकी श्रद्धा होती है और जिसकी जैसी निष्ठा होती है, उसकी वैसी ही गति भी होती है।

यहाँ जो पहली बात श्रीभगवान कहते हैं कि आहार तो शरीर की आवश्यकता है और जिसकी जैसी निष्ठा होती है, उसकी पहचान केवल यजन, पूजन से ही नहीं होती, बल्कि भोजन के प्रति रुचि, उनके आहार '**आहारस्त्वपि**' से भी उनकी पहचान हो जाती है।

वे कहते हैं कि कुछ लोगों का मन स्वाभाविक ही कुछ भोज्य पदार्थों को देखकर ललचाने लगता है और उसके अनुसार भी उनकी श्रद्धा की पहचान हो जाती है। इस संदर्भ में एक रुचिकर कथा आती है।

एक प्रसिद्ध संत हुए; उनका नाम था—संत वल्लभाचार्य। एक बार एक प्रसिद्ध धनाढ्य सेठ उनसे मिलने आए। वे बोले—"महाराज! मैं 1000 स्वर्णमुद्राएँ दान देना चाहता हूँ, पर चाहता हूँ कि यह धन उचित व्यक्ति के पास जाए।" स्वामी वल्लभाचार्य बोले—"सेठ जी! यह धन आपका सुधर्म का पालन करते हुए अर्जित है अथवा दुष्कर्मों के पथ से प्राप्त हुआ है।"

सेठ बोले—"स्वामी जी! आप माफ करें, पर यह धन अनीति का है। यह कालाबाजारी का धन है।" स्वामी जी बोले—"सेठ जी! फिर यह धन अपनी प्रवृत्ति के अनुसार व्यक्ति ढूँढ़ लेगा।" सेठ बोले—"ऐसा कैसे?"

स्वामी जी बोले—"जिसकी जैसी प्रवृत्ति होती है—सात्त्विक, राजसिक या तामसिक, वह व्यक्ति अपनी प्रवृत्ति के अनुरूप, अपनी श्रद्धा के अनुरूप धन के प्रति आकर्षित होता है। फिर उसी प्रवृत्ति के अनुरूप वह आहार, विहार या आचरण करता है।" सेठ को स्वामी जी के कहे पर विश्वास नहीं हुआ। स्वामी जी सेठ के असमंजस को समझ गए। वे बोले—"ऐसा करो सेठ जी कि आपको जो व्यक्ति सही लगे, उसे जाकर यह धन दे दो। कल उससे जाकर पूछना कि उसने उस धन का क्या किया? पहले प्रयोग के रूप में 10 स्वर्णमुद्राएँ देकर देखो।"

यह बात सेठ की समझ में आई। उन्होंने उस धन को स्वामी जी के पास रखा और 10 मुद्राएँ लेकर नगर-भ्रमण को गए। बहुत देर ढूँढ़ने पर उनको एक अंधा व्यक्ति मिला। सेठ ने सोचा—यह अंधा व्यक्ति धन से क्या बुरा काम करेगा। मैं इसी को दे देता हूँ। मुद्राएँ उसे देकर वे वापस स्वामी जी के पास लौट आए। वहाँ पर लौटने पर स्वामी जी ने कहा—"अब सेठ जी! कल वापस जाकर आप उस व्यक्ति से पूछना कि उसने आपके धन का क्या उपयोग किया?"

अगले दिन जब वे उस व्यक्ति से मिलने गए तो उन्हें भरोसा नहीं हुआ कि यह वही नेत्रहीन व्यक्ति है, जो एक दिन पहले मिला था। वह व्यक्ति नशे में धुत्त था। उसने सारा धन मांसाहारी भोजन, मदिरा, ऐसी तामसिक चीजों में बरबाद् कर दिया था। सेठ जी ने वापस लौटकर स्वामी जी को यह घटनाक्रम सुनाया। स्वामी जी बोले—"इसीलिए मैं कह रहा था कि जैसी निष्ठा, वैसा आहार।"

यही सत्य श्रीभगवान भी इस श्लोक में कहते हैं। वे कहते हैं—"श्रद्धा के अनुसार व्यक्ति आहार लेता है, और जिस तरह से आहार तीन प्रकार का होता है—वैसे ही शास्त्रीय यज्ञ, तप, आदि कार्य भी तीन तरह के होते हैं।" श्रीभगवान यहाँ उसी भेद का वर्णन करने वाले हैं, जिसके लिए वे कहते हैं कि "**तेषां भेदमिमं शृणु**"—उनके भेद को भली भाँति सुनो। आगे के श्लोकों में उसी भेद का वर्णन है। (क्रमश:)

# कर्मबंधन से मुक्ति व आनंद का मार्ग है—ध्यान

वर्षा ऋतु में महात्मा बुद्ध श्रावस्ती के समीप जैतवन में रह रहे थे। वे वहाँ नित्य उपदेश देते। उस दिन वे सदाचार के नियमों का उपदेश दे रहे थे। उनकी सभा में बौद्ध भिक्षु एवं अन्य सामान्य जनों के साथ महापाल नाम का एक गृहस्थ भी बैठा था। महापाल अपार धन-संपदा का स्वामी था।

महात्मा बुद्ध उपदेश में कह रहे थे कि मनुष्य को सदा ऐसे कर्म और आचरण करना चाहिए, जिसका परिणाम प्रारंभ में भी सुंदर, मध्य में भी सुंदर और अंत में भी सुंदर हो और निस्संदेह सत्कर्म और सदाचार आदि का परिणाम प्रारंभ में, मध्य में और अंत में सुंदर ही होता है अर्थात सत्कर्म और सदाचार का परिणाम सदैव सुंदर ही होता है।

बुद्ध की यह वाणी सभा में बैठे महापाल के हृदय में उतर गई। वह बुद्ध के उपदेश से बहुत प्रभावित हुआ। वह बुद्ध से दीक्षा ग्रहण करने को व्याकुल हो उठा। बहुत अनुनय-विनय करने एवं उसकी सच्ची श्रद्धा देखकर बुद्ध उसे दीक्षा देने को राजी हुए। बुद्ध ने अपनी दिव्यदृष्टि से उसके अतीत और वर्तमान को देखकर उसे ध्यानयोग की दीक्षा दी। दीक्षित होने के बाद बुद्ध ने महापाल को एक नया नाम दिया—चक्षुपाल।

उसे दूर के एक मठ में एक छोटी-सी कोठरी दे दी गई, जिसमें चलना-फिरना या लेटना तो संभव न था, पर उसमें बैठकर ध्यान अवश्य लगाया जा सकता था। चक्षुपाल उसी छोटी-सी कोठरी में बैठकर ध्यान लगाने लगा। वह महीनों तक बुद्ध के बताए ध्यान में डूबता रहा, उतरता रहा, पर इसके बाद चक्षुपाल के साथ एक विचित्र घटना घटी।

ध्यान में डूबे चक्षुपाल के नेत्रों से अचानक पानी बहने लगा और उसकी आँखों में लगातार दरद रहने लगा। उसकी आँखों का इलाज किसी भी वैद्य, हकीम से संभव न हो सका। धीरे-धीरे उसकी दोनों आँखों की ज्योति चली गई, पर दृष्टिहीन हो जाने के बाद भी चक्षुपाल ने ध्यान का अभ्यास नहीं छोड़ा। वह अक्सर घंटों तक ध्यान में ही डूबा रहता।

धीरे-धीरे उसका ध्यान इतना गहरा होता गया कि वह नेत्रों से पानी आते रहने के बाद भी ध्यान में होता। उसका ध्यान भंग नहीं होता और वह ध्यान में तब तक लीन रहा, जब तक कि उसने अनाहत, अजेय व निर्वाण अवस्था की अनुभूति नहीं कर ली। अपने घर पर भी वह अक्सर ध्यान में लीन रहकर आनंदित रहता।

वर्षा ऋतु में वह अक्सर अपने घर से श्रावस्ती के समीप जैतवन में महात्मा बुद्ध के पास ही रहने आ जाता; क्योंकि वर्षा ऋतु में बुद्ध अक्सर वहीं आकर रहा करते थे। एक दिन बौद्ध भिक्षुओं का एक दल भ्रमण करता हुआ वहाँ बौद्ध मठ में आया।

उन सबने तथागत के अमृत उपदेश को सुना। उपदेश सुनने के बाद उन सबने बुद्ध को प्रणाम कर वहाँ उपस्थित अस्सी महाभिक्षुओं को भी प्रणाम किया। फिर उन सबने चक्षुपाल से मिलने की अनुमति चाही। रात्रि में वर्षा और तूफान के परिणामस्वरूप कीड़े-मकोड़ों का झुंड बाहर निकल आया था।

दृष्टिहीन भिक्षु चक्षुपाल तूफान के बाद यद्यपि सारी रात सो न सका था तो भी वह स्फूर्तिसंपन्न था

और अपनी कोठरी के दरवाजे के सामने बाहर गीली धरती पर चहलकदमी कर रहा था। वहाँ मरे हुए कीड़े-मकोड़ों के ऊपर ही दृष्टिहीन चक्षुपाल चहलकदमी कर रहा था।

नेत्र-ज्योति जाने का लेशमात्र भी दु:ख उसके चेहरे पर नहीं था। उसके चेहरे पर अपूर्व शांति और सौम्यता व्याप्त थी और ये सब ध्यान से अनुभूत उसके आंतरिक आनंद और उल्लास के कारण ही था। वह मुक्त, निर्द्वंद्व गीली धरती पर आनंदातिरेक में पुलकित हो चहलकदमी कर रहा था।

उसके अंदर उठ रहे आंतरिक आनंद और सौंदर्य की अनुभूति को उसके अलावा कोई और कैसे अनुभूत कर सकता था। उसके अंदर व्याप्त परमानंद और परम सौंदर्य को अपने चर्मचक्षुओं से कोई निहार या देख भी कैसे सकता था; क्योंकि चर्मचक्षुओं से तो स्थूल चीजें ही देखी या स्पर्श की जा सकती हैं। वहाँ पहुँचे नए बौद्ध भिक्षुओं में भी वह दृष्टि कहाँ थी, जिससे वे चक्षुपाल के अंदर उभर रहे आनंद और सौंदर्य को देख या अनुभूत कर पाते।

वे वहाँ जैसे ही पहुँचे उन्होंने देखा कि दृष्टिहीन चक्षुपाल अपनी कोठरी से बाहर चहलकदमी कर रहा है और यह क्या दृष्टिहीन होने के कारण उसने अनेक कीड़े-मकोड़ों को भी शायद चहलकदमी करने के दौरान अपने पैरों से कुचलकर मार दिया है। जब भ्रमणकारी भिक्षुओं ने यह देखा तो वे बहुत रुष्ट हुए।

वे एकदूसरे से कहने लगे—"देखो! वरिष्ठ चक्षुपाल ने यह क्या कर दिया। जब उसकी आँखों में ज्योति थी तो वह सोया रहा और कोई पाप नहीं किया, पर अब चूँकि उसकी नेत्र-ज्योति जाती रही है, इसने इतने सारे कीड़े-मकोड़ों को अपने पैरों तले कुचलकर मार दिया है। यह धम (पुण्याचारी) तो नहीं हो सका, बल्कि यह तो अधम (पापाचारी) हो गया।"

वे भ्रमणकारी भिक्षु तुरंत इसकी सूचना देने को तथागत के पास पहुँच गए। "क्या तुम लोगों ने चक्षुपाल को चलने के दौरान कीड़े मरते हुए देखा?"—बुद्ध ने पूछा। "नहीं भगवन्! हमने उसे ऐसा करते हुए तो नहीं देखा।" तब बुद्ध बोले—"जैसे तुमने वहाँ मरे हुए कीड़ों को देखा, पर उन्हें चक्षुपाल के पैरों तले मरते हुए नहीं देखा, वैसे ही भिक्षुओ! जो चक्षुपाल विकृतियों से मुक्त हो चुका है, वह किसी को कष्ट देने के बारे में सोच भी नहीं सकता।"

फिर भिक्षुओं ने पूछा—"भगवन्! यहाँ यह चर्चा है कि अर्हंत बनना। बंधनमुक्त होना चक्षुपाल की नियति में है और आपने उसे चक्षुपाल नाम भी दिया, पर फिर भी वह अपनी दृष्टि (नेत्र-ज्योति) क्यों खो बैठा? यदि वह तपस्वी है, पुण्यात्मा है, सदाचारी है, ध्यानी है तो फिर वह अपनी नेत्र-ज्योति क्यों खो बैठा?"

तब बुद्ध बोले—"भिक्षुओ! यह उसके इस जन्म के नहीं, उसके पूर्वजन्म के कर्मों का फल है।" "क्या उसने ऐसा कुछ किया था?"—भिक्षुओं ने पूछा। बुद्ध बोले—"भिक्षुओ! तो सुनो। बात बहुत समय पहले की है, जब काशी का राजा बनारस पर राज करता था। तभी एक चिकित्सक अपना कारोबार करते हुए गाँव और शहरों में घूम रहा था।

"एक कमजोर आँखों वाली महिला को देखकर उस चिकित्सक ने पूछा—'तुम्हें क्या कष्ट है?' 'मेरी नेत्र-ज्योति जाती रही है।' 'मैं आपका इलाज करूँगा, पर आप इसके बदले मुझे क्या दोगी?' 'यदि आप मेरी आँखों को

ठीक कर देंगे तो मैं अपने पुत्र-पुत्रियों के साथ आपकी दासी बन जाऊँगी।'—वह महिला बोली। तब उस चिकित्सक ने उसे एक औषधि दी, जिसके एक बार लगाते ही उसकी आँखें पुनः ठीक हो गईं।

''इस पर स्त्री ने सोचा कि मैं इसकी दासी बनने का वचन दे चुकी हूँ। मेरे पुत्र एवं पुत्रियाँ भी इसके दास होंगे, पर दासी बनते ही यह मेरे साथ अच्छा व्यवहार नहीं करेगा। इसलिए मैं उसे धोखा दूँगी।

''जब चिकित्सक आया और उससे पूछा कि उसका क्या हाल है तो उसने झूठ बोलते हुए यह कहा कि पहले मेरी आँखों में थोड़ी पीड़ा थी, पर अब तो और अधिक कष्ट है। चिकित्सक समझ गया कि यह स्त्री झूठ बोल रही है और मुझे धोखा दे रही है; क्योंकि यह मुझे कुछ भी देना नहीं चाहती। मैं अब उससे कुछ भी नहीं लूँगा। अब मैं उसे फिर से अंधा बना दूँगा।

''वह घर चला गया और सारी बातें पत्नी को बताईं। उसकी पत्नी ने कुछ नहीं कहा। तब उसने एक मरहम तैयार किया और उस स्त्री के घर जाकर उससे कहा कि आप इस मरहम को आँखों पर मलो। उसने ऐसा ही किया और उसकी आँखों की ज्योति बुझ गई; वैसे ही, जैसे दीपक की लौ बुझ जाती है। जानते हो वह चिकित्सक कौन था। वह यही चक्षुपाल ही था।''

''भिक्षुओ! चक्षुपाल के द्वारा पूर्वजन्म में किया गया कर्म उसका अब भी पीछा कर रहा है; क्योंकि मनुष्य के कर्म उसका पीछा वैसे ही नहीं छोड़ते, जैसे कि गाड़ी के पहिए, गाड़ी में जुते हुए बैलों का पीछा नहीं छोड़ते।'' इस कहानी के माध्यम से बुद्ध ने भिक्षुओं को यह सीख दी कि यदि कोई व्यक्ति मन में बुरे विचार रखकर कुछ बोलता है या कोई कार्य करता है तो वह हमेशा बुरे कर्म ही करता है और यदि मन में अच्छे विचार रखकर कोई कार्य करता है तो वह हमेशा अच्छे कर्म ही करता है और वह तदनुरूप ही अच्छे-बुरे फल प्राप्त करता है; क्योंकि उसके कर्म उसका पीछा वैसे ही करते हैं, जैसे गाड़ी के पहिए गाड़ी में जुते हुए बैलों का करते हैं।

पर हाँ! यहाँ यह जानना अत्यधिक महत्त्वपूर्ण है कि यदि चक्षुपाल ने इस जन्म में इतना प्रचंड तप या ध्यान न किया होता तो इतनी आसानी से वह पिछले जन्म के कर्मबंधनों से मुक्त न हुआ होता। वह टूटकर बिखर गया होता। जीवनभर रोता और बिलखता रहता। वह भारी वेदना और पीड़ा में होता, पर प्रचंड तप और ध्यान के प्रभाव से वह मानसिक और आध्यात्मिक रूप से इतना बलिष्ठ हो गया कि वह उन कर्मों का भोग हँसते-हँसते कर सका एवं आनंद और मुक्ति के रूप में जीवन के परम लाभ को भी प्राप्त कर सका। इसलिए सत्कर्म, सदाचरण के साथ-साथ नित्य तप और ध्यान किया करो वत्स! यह कर्म-बंधन से मुक्ति व आनंदप्राप्ति का मार्ग है। ❑

**वर्षा की फुहारों से धरती में से अनेक पौधे फूट पड़े। दुर्भाग्य से सब पौधे आपस में ही लड़ पड़े और उनमें से हरेक अपने को ज्यादा महत्त्वपूर्ण व उपयोगी बताने लगा। विवाद बढ़ता गया। छह माह ऐसे ही लड़ते-झगड़ते व्यतीत हो गए। ज्येष्ठ ऋतु का आगमन हुआ तो उसके ताप से सारे पौधे सूख गए और जब बिछड़ने की घड़ी आई तो उन्हें अनुभव हुआ कि उन्होंने पूरी उम्र यों ही लड़ने-झगड़ने में व्यतीत कर दी। दुःखी पौधों ने संकल्प लिया कि यदि पुनः अवसर मिला तो प्रेमपूर्वक रहेंगे। तब से पौधे हँसते-खेलते, सहयोग-सहकार से रहते हैं, मात्र इनसान ही इस छोटी-सी बात को समझ नहीं पाता।**

**►'नारी सशक्तीकरण' वर्ष ◄**

# गुरुसत्ता को श्रद्धांजलि

**परमवंदनीया माताजी के उद्बोधनों की यह मौलिकता है कि वे सारगर्भित भी हैं, संवेदना को जगाने वाले भी हैं और संकल्प को मजबूत करने वाले भी हैं। अपने इस प्रस्तुत उद्बोधन में वे कुछ इसी तरह की भावनाएँ प्रत्येक परिजन के हृदय में जगाती दृष्टिगोचर होती हैं। परमपूज्य गुरुदेव के महाप्रयाण के उपरांत आयोजित श्रद्धांजलि समारोह के अवसर पर दिए गए उनके इस व्याख्यान में वे सभी परिजनों को आश्वस्त करती हैं कि वे स्वयं एवं परमपूज्य गुरुदेव, दो नहीं, बल्कि एक चेतना एवं एक सत्ता हैं। वंदनीया माताजी यह कहती हैं कि पूज्य गुरुदेव से एकाकार वही हो सकता है, जो उनके उद्देश्य के प्रति स्वयं को पूरी तरह समर्पित कर दे और ऐसा करने वाला फिर कभी कैसे भी नुकसान में नहीं रह सकता है। आइए हृदयंगम करते हैं उनकी अमृतवाणी को........**

## गुरुदेव और माताजी एक हैं

गायत्री मंत्र हमारे साथ-साथ—

**ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्।**

बेटियो, आत्मीय प्रज्ञा परिजनो! उपस्थित हमारे आत्मीय जनो! बाहर से आए हुए हमारे परिजन, विदेशों से आए हुए हमारे परिजन, सभी का, सभी बच्चों का यहाँ हार्दिक स्वागत करती हूँ, जो इतनी कठिनाइयाँ सहकर के, न जाने कितनी-कितनी इन्होंने गाड़ियाँ बदलीं, कितने-कितने दिनों में बच्चे यहाँ आए हैं, इनकी श्रद्धा का मैं स्वागत करती हूँ और साथ ही आशीर्वाद हमारा और गुरुजी, दोनों का आप सभी को है।

हम दोनों एक ही हैं, एक ही रूप में दोनों हैं। गुरुजी और हम अलग-अलग नहीं हैं, शरीर से भले ही अलग हो गए हों; लेकिन उनकी दिव्यचेतन मेरे अंदर पूर्णतः समायी हुई है।

मैं नहीं समझती कि वे मुझसे अलग हैं। मैं दाएं और बाएँ, आगे और पीछे उनका संरक्षण पाती हूं और उनकी प्रेरणा हर क्षण मुझको मिलती रहती है आप लोगों को उपस्थित किया गया है, बुलाया गय है, आमंत्रण दिया गया है, आखिर क्यों?

इस संदर्भ में मैं कहना चाहूँगी कि जो गुरुज के पावन संदेश एवं जो पावन प्रेरणाएँ, जो उन्होंने चलते समय मुझे बुलाकर बताईं, वे सभी मैं आपको सुनाना चाहती हूँ। व्याख्यान नहीं, व्याख्यान मुझे न कभी आया, न आएगा और न मैं अभी व्याख्यान कर रही हूँ।

मैं तो अपने बालकों से, अपने परिजनों से अपने दिल की एक बात कहना चाहती हूँ, जो वि

महाप्रयाण से पहले बैठा करके मुझसे उन्होंने कही, वही मैं संदेश आपको सुनाना चाहती हूँ, जो पावन संदेश के रूप में है।

चूँकि आपको यहाँ बुलाया गया, आप यह न समझें कि आपका श्रम निरर्थक गया है, आपका अर्थ निरर्थक गया। निरर्थक नहीं गया है, आपका धन सार्थक में लग गया, आपके श्रम की बहुत आवश्यकता है। इस देश को इस महान कार्य में आपके दान की बहुत आवश्यकता थी और हमने महसूस किया कि हमारे परिजनों में, हमारे बच्चों में वह शक्ति संघशक्ति की प्रतीक है, इसलिए हमने आपको इकट्ठा किया।

चूँकि दो जून के बाद अथवा उस समय हम आपको बुला नहीं सकते थे, जो कि अपने पिता के लिए आप श्रद्धांजलि देते। समय बीतता गया, अंत:प्रेरणा हुई कि क्यों न अपने बालकों को जो दूर-दूर देशों में फैले हुए हैं, अपने राष्ट्र में विभिन्न प्रांतों में फैले हैं, इनको एकत्रित किया जाए और उस संत को—ऋषि को, उस पिता को एक संकल्पशक्ति के रूप में श्रद्धांजलि प्रस्तुत करें। इसलिए मैंने आपको यह कष्ट दिया। मुझे मालूम है कि कितना आपने श्रम किया है ? आपके हाथों में छाले पड़े हैं, मुझे मालूम है।

## आपका कष्ट हमारा कष्ट

बेटे ! मेरे मन में छाले पड़े हैं, तुम्हारे हाथों में पड़े हैं। मेरे मन में पड़े हैं, मेरा मन बहुत कोमल है। दृढ़ भी ऐसा है कि एक चट्टान के तरीके से। हमारे संकल्प के सामने चट्टान को भी चूर होना पड़ेगा। मेरा हृदय इतना दृढ़ है और इतना कोमल है कि अपने बच्चों के दु:ख को देखकर के मन विह्वल हो जाता है कि यह कष्ट हमारे ऊपर क्यों नहीं आया ? हमने क्यों नहीं सहा ?

जिस तरीके से शंकर जी ने विष पिया था जनहित के लिए, इसी तरह हम भी अपने परिवारीजनों के लिए, जिसको हम अपना विशाल परिवार कहते हैं, इनके कष्टों को हलाहल की तरह से क्यों न पी जाएँ ? जरूर अनुभव भी किया और पिया भी। शायद आप में से हजारों की तादाद में परिजन सोच बैठे होंगे कि किन-किन कठिनाइयों में से, किन-किन परेशानियों में से उनको उबारा गया है, निकाला गया है दलदल से। किस नरक की अग्नि में वे झुलस रहे थे और आज इनको एक स्वर्ग तक ला पहुँचाया है, यह कैसे संभव हुआ ?

**अखण्ड ज्योति परिवार के परिजनों में अधिकांश बहुत सुसंस्कारी आत्माएँ हैं। उन्हें प्रयत्नपूर्वक ढूँढ़ा और परिश्रमपूर्वक एक टोकरी में संग्रह किया गया है। वही हमारा परिवार है। इनसे नवनिर्माण की भूमिका संपादन करने की, अग्रिम मोर्चा सँभालने की हमारी आशा अकारण नहीं है। उसके पीछे एक तथ्य है कि उत्कृष्ट आत्माएँ कैसे ही मलिन आवरण में क्यों न फँस जाएँ, समय आने पर वे अपना स्वरूप और कर्त्तव्य समझ लेती हैं और दैवी प्रेरणा और संदेश को पहचानकर सामयिक कर्त्तव्यों की पूर्ति में विलंब नहीं करतीं।**

***—परमपूज्य गुरुदेव***

ऋषि विश्वामित्र ने जो तपस्या की थी, तो केवल एक के लिए नई सृष्टि स्थापित की थी। इस विश्वामित्र ने करोड़ों जो हमारे भारतवासी हैं, उनके लिए और सारे विश्व में जो मानवमात्र फैला हुआ है, उसके कल्याण के लिए, उन्हें मुक्ति दिलाने के लिए, उन्होंने बीड़ा उठाया और कहा कि हम स्वर्ग स्थापित करके रहेंगे और हम बताएँगे कि स्वर्ग

क्या होता है और नरक क्या होता है? खुदगर्ज क्या होता है और परोपकारी क्या होता है?

## क्या है ब्राह्मणत्व

ब्राह्मणत्व क्या होता है? असली ब्राह्मण कौन होता है, क्या हो सकता है, उसके गुण क्या हैं? उसका आदर्श क्या है? उसकी भावनाएँ क्या हैं? ब्राह्मण एक ही हो सकता है, वह हो सकता है— जिसके अंदर करुणा, दया, संवेदना, ज्ञान को बाँटने की, अज्ञानता के अँधेरे से निकालने की पीर है, यही ब्राह्मण की पहचान है।

आगे मैं यह निवेदन करूँगी कि जो महाप्रयाण के वक्त उससे दो-चार दिन पहले मुझे बुलाकर उन्होंने संदेश दिया था, उसी संदर्भ में मुझे दो उदाहरण याद आ रहे हैं। भगवान बुद्ध ने अपनी सांसारिक जो कार्यप्रणाली थी, उसे समेटने वाले दिन अपनी नित्य साधना प्रारंभ की, तो उनका एक मुँहलगा शिष्य था—आनंद। उसने यह कहा— ''गुरुदेव आप यह बताइए कि आप तो इस साधना में लग गए, तो हमें प्रेरित कौन करेगा? आप यह तो बताइए कि हमको करना क्या है?'' तो उन्होंने कहा—''एक ही कार्य है कि सारे विश्व में फैल जाओ। हर देश के चप्पे-चप्पे में आप जाकर फैल जाइए।''

उनके महाप्रयाण के बाद उन शिष्यों ने उस संदेश को फैलाया और आगे बढ़ चले। जड़ें हिंदुस्तान में रहीं; लेकिन टहनियाँ और पत्ते सारे संसार में फैलते चले गए। चीन से लेकर कोरिया, श्रीलंका से लेकर थाईलैंड तक और न जाने कहाँ-कहाँ तक सारे विश्वभर के देशों में बौद्ध धर्म फैलता हुआ चला गया।

यह निर्देश था उन बुद्ध का, जो धर्मचक्र के प्रवर्तक थे। उन परिस्थितियों में यह बहुत बड़ी आवश्यकता थी।

## घर-घर अलख जगाएँ

बेटे! यही परिस्थितियाँ आज भी बिलकुल विद्यमान हैं। इसके लिए बहुत आवश्यक है, चाहे आप इसे निर्देश समझिए, चाहे अनुनय-विनय, एक ही है, वह संस्था एक ही है, वह मार्गदर्शक— एक ही है, वह प्रेरणास्रोत जो आगे आपको लेकर चल सकता है।

आप लोग चलना चाहें, तो वह है आपके गुरु एवं मिशन। जैसे कि मैंने अभी आपसे निवेदन किया था कि सारे नगरनिवासी, जो भी कोई आता है, वह यह कहता चला जाता है कि अरे! माताजी! हमने हजारों संस्थाएँ देखी हैं; लेकिन यहाँ के जैसा कहीं देखा ही नहीं। आपके ये बच्चे क्या हैं? इनकी तो हथेलियाँ चूमने लायक हैं।

मुझे गर्व होता है—मैं यह समझ रही थी कि मैं अपने ही शरीर से जुदा हो गई हूँ, मैं अकेली हो गई हूँ। नहीं, मुझे हर समय अनुभूति है, अभी भी मुझे अनुभूति है। अभी भी ऐसा मालूम पड़ रहा है कि वे मेरे निकट पास ही बैठे हैं। फिर भी शरीर की जो जुदाई होती है, इतने तो हम वैरागी नहीं हैं कि हम उन्हें भूल जाएँ। वे भुला दिए जाएँ।

उस परमसत्ता को हम कैसे भुला सकते हैं? उस संत को मैं क्या, आप में से कोई भी भुला नहीं सकता। आपको यह काम हाथ में लेना चाहिए, जो भगवान बुद्ध ने अपने शिष्यों को निर्देश दिया था, वही निर्देश आप पर भी लागू होता है कि आपको भी घर-घर अलख जगाना है।

हर व्यक्ति को उठाने के लिए पहले स्वयं को उठाना पड़ता है, स्वयं को ब्राह्मण जीवन जीना पड़ता है, अपने लिए कम, दूसरों के लिए ज्यादा। इसी संदर्भ में एक दूसरा उदाहरण मुझे याद आ गया कि गुरु नानक जा रहे थे भ्रमण के लिए।

एक गाँव पड़ा, कसबा पड़ा। जहाँ जाकर उन्होंने विश्राम किया, तो जो उनकी शिष्यमंडली थी, उन्होंने यह कहा—''भगवान! यहाँ के जो निवासी हैं, नरक में रहते हैं। जो भी दुर्गुण हैं, उन सब अवगुणों से ये संपन्न हैं। अभक्ष खाने से लेकर शराब पीने तक और भी जो-जो गंदी आदतें हैं, सारी-की-सारी इनमें हैं।

ऐसी कटुता से भरी जिंदगी है। गृहस्थ जीवन देखें, तो आग लगी पाएँगे। धू-धू जलते हुए, इनका यह रहन-सहन है। ऊपर के लिफाफे से देखने में तो टीपटॉप हैं, ऐसे मालूम होंगे कि बस, क्या कहने के, किंतु भीतर घोर गंदगी व्याप्त है। जब सुबह हुई और वे जाने लगे, तो गाँववालों ने कहा—हमारे लिए कोई आशीर्वाद। उन्होंने कहा—बच्चो! आप आबाद रहें, आबाद हो जाइए। आगे जब चले, तो एक और गाँव नजर आया।

विश्राम करके जब जाने लगे, तो फिर उनके शिष्यों ने कहना शुरू किया कि भगवान! यहाँ जो भी व्यक्ति हैं—बड़े श्रद्धालु, भक्ति से ओत-प्रोत और सादा जीवन-उच्च विचार, सेवाभावी, सहायक, दूसरों के प्रति मर-मिटने वाले, ऊँचा उठाने में कोई कसर नहीं छोड़ते, यहाँ तो साक्षात् स्वर्ग है, ऐसा मालूम पड़ता है कि आकाश से उतरकर स्वर्ग पृथ्वी पर आ गया है।

उनको बहुत प्रसन्नता हुई। प्रसन्नता हुई, तो उन्होंने चलते वक्त उनको आशीर्वाद दिया कि आप बरबाद हो जाइए। मगर यह क्या कह रहे हैं? उनको आबाद, इनको बरबाद? शिष्यों की शंका का समाधान उन्होंने किया और यह कहा—''देखो! जो गंदगी है, वह ढककर रखी जाती है; ताकि सारे समाज में काफी बदबू न फैले और अच्छाइयाँ होती हैं, वह बिखरने के लिए होती हैं।

''इसलिए मैंने इनसे यह कहा कि आप बरबाद हो जाइए। एक जगह संगठित बैठे रहेंगे, तो अच्छाई घर-घर कैसे फैलेगी? अच्छाइयाँ फैलाने के लिए फैलना ही पड़ेगा, ऐसा गुरु नानक ने अपने शिष्यों से कहा।''

## गुरुदेव का आदेश याद रखें

हमारे मिशन के इतिहास में भी एक विलक्षण मोड़ आया। ऐसा जबरदस्त मोड़ आया—दहलाने वाला, जो सारे मोड़ों को मैं भूल चुकी थी। ऐसी कठिन परिस्थितियाँ कि मथुरा छोड़ना पड़ा, बच्चे छोड़ने पड़े, परिजन छोड़ने पड़े और जहाँ कि कोई बिल्ली और कुत्ता भी होता है, याद आता है, लेकिन यहाँ गुरुजी के कदम-से-कदम मिलाकर आगे चलती हुई, चली गई। आगे बढ़ाने में उनका बहुत बड़ा हाथ था, जो इस मंजिल तक, अपने समकक्ष लाकर उन्होंने मुझे खड़ा किया।

**कुआँ समुद्र से बोला—''आपने सब नदी-नालों को अपने भीतर स्थान दिया है, फिर मुझसे ही पक्षपात क्यों?''**

**समुद्र बोला—''अपने चारों ओर दीवार बनाकर तुमने ही स्वयं को सीमाबद्ध कर लिया है। उनसे मुक्त हो जाओ तो मुझे स्वतः ही पा लोगो।'' मनुष्य का भी क्षुद्र कामनाओं से घिरे रहने के कारण उसका विराट से मिलन नहीं हो पाता।**

मैं बड़ी सौभाग्यशाली हूँ। अभी भी अपने को सौभाग्यशाली मानती हूँ, किंतु एक परिवर्तन आया, ऐसा आया कि जी दहलने लगा। मैंने जी कड़ा किया, अपने अंदर दृढ़ता पैदा की कि नर्वस होने की जरूरत नहीं है। जो कहा जा रहा है, उसके

प्रेरणा के रूप में अब तक जो अपनी जिंदगी रही है—एक साधिका के तरीके से, एक पुजारिन के तरीके से।

इस भगवान की प्रत्येक आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है। उसको मैं अपना मस्तक झुका करके सुनूँगी। चाहे कितनी ही विकट परिस्थितियाँ क्यों न हों, सब से लोहा लेने के लिए मैं अपने को चट्टान जैसी दृढ़, लोहे जैसी पाषाण बना लूँगी और बनाया है।

मैं आपसे यही निवेदन करूँगी कि उनका आदेश क्या था, उनका उपदेश क्या था, उसे याद रखें? उनका एक निर्देश था, वह था कि उन्होंने मुझे बुला करके दो-तीन बार कहा भी था; लेकिन आँखें एक ही बार में छलछला आईं, हम दोनों आधे घंटे के करीब ऐसे ही बैठे रहे। हम दोनों के आँसू बंद नहीं हुए।

मैंने कहा—कहिए, अब हमें क्या निर्देश है? वह यह कि जिस तरीके से रामकृष्ण परमहंस नहीं रहे और उनकी पत्नी कई साल जीवित रहीं। उन्होंने अपने मिशन को बनाया और मिशन से जुड़े जो बच्चे कहीं कुम्हला न जाएँ, इस तरीके से इनको सेती रहना, जैसे कि मुरगी अपने बच्चों को छाती से लगाए रहती है। इनकी रक्षा करती रहना, इनको प्यार देती रहना, इनको दुलार देती रहना, इनको प्रेरणा देती रहना, इनको मार्गदर्शन देती रहना, नहीं तो ये भटक जाएँगे।

यह दुनिया की भीड़ में खो जाएँगे, कोई अपहरण करके न ले जाए, कहीं ये गुमराह न हो जाएँ। तुम्हारा कर्त्तव्य है, तुम माँ हो। मैंने कहा—मैं सच्चे अर्थों में माँ हूँ, दो की नहीं, चार की नहीं, मैं लाखों दिल और दिमाग की, करोड़ों भुजाओं-भुजाओं की माँ हूँ। लाखों बच्चे मेरे हैं और करोड़ों भुजाएँ हैं और मैं कितनी सौभाग्यशाली माँ हूँ, जिसके पास इतने बच्चे हों, जो मेरी हर आज्ञा के पीछे अपनी जान कुरबान करने को तैयार हो जाएँ, तो मुझे किसी की चिंता नहीं।

बेटो! आज परीक्षा में आप सफल हुए हैं। मुझे बहुत खुशी हुई है कि जिस मोर्चे पर लगा दूँगी, उसी मोर्चे पर ये सेना, मेरे बालक, मेरे नाचीज छोटे-छोटे नन्हे बालक, मेरे लिए इतने-इतने से हैं। चाहे आपके भूरे बाल क्यों न हो गए हों? आपकी दाढ़ी-मूँछ भूरी क्यों न हो गई हो? चाहे आपके झुर्रियाँ क्यों न पड़ गई हों? लेकिन मेरे लिए तो आप वही हैं, जैसे कि छोटा अबोध बच्चा हो और उसके प्रति जो ममता, दया, जो एक माँ के अंदर होती है। एक आँख दुलार की, तो एक आँख उसकी सुधार की।

जहाँ दुलार की बात है, वहाँ संपूर्ण दुलार निछावर है। कहीं आपके कदम गड़बड़ाएँगे, तो वहाँ मेरी सुधार की आँख काम करेगी। चाहे मुझे कड़क भाषा क्यों न बोलनी पड़े? तो वह मैं बोलूँगी। नहीं, सुनेंगे तो जबरदस्ती मुझे सुनानी पड़ेगी। सोते होंगे, तो जगाना पड़ेगा, कहना पड़ेगा कि बेटा उठ, तेरे उठने का समय है। क्या सोता ही रहेगा? क्या यह सोने का समय है?

सारे देश में चीत्कार फैली हुई है, जो भयावह है वह आग, इसे मैं आग के सिवाय और कुछ नहीं कहती। इसका निवारण कौन करेगा? इसका निवारण वह ब्राह्मण करेगा, जिसके अंदर करुणा है, संवेदना है, वही कर सकता है। अन्यथा कोई नहीं कर सकता।

## ब्रह्मकमल खिल उठा

तो उन्होंने मुझे निर्देश दिया। मैंने कहा—जैसा आप कहते हैं—वैसा ही होगा। मैं तो एक साल पहले यह कह रही थी कि मुझे जाना चाहिए। आपने मेरे मुँह पर हाथ रख दिया, नहीं, यह मत

कहना। यह तुम्हें कभी नहीं कहना चाहिए। 30 साल तो मेरे बेटो, मुझे नहीं रहना है, पर उनके कार्यों के लिए, लक्ष्य के लिए, यदि भगवान कुछ वर्षों की जिंदगी देते हैं, तो मैं उसे स्वीकार भी करूँगी।

वैसे मेरा मन नहीं है। मैंने जैसे ही देख लिया कि बच्चे इस लायक हैं, समर्थ हो गए हैं, तो इन्हें जिम्मेदारी सौंपकर मुझे भी विदाई ले लेना चाहिए। मैं क्यों बाजी मारने में इतनी पीछे रह जाऊँ? मैं भी उस बाजी को जल्दी मारूँ।

अभी ऐसा नहीं है, उन्होंने कहा—फिर अपने कुछ बालकों को बुलाकर के उन्होंने स्वप्न सुनाना चाहा। उन्होंने कहा कि आज मैंने स्वप्न देखा है। बात लंबी हो जाएगी, पर मैं कहकर ही उठूँगी। उन्होंने कहा कि आज बच्चो मुझे कुछ नींद आ गई और मैंने एक स्वप्न देखा। स्वप्न में क्या देखा? गुरुदेव! आपको स्वप्न तो कभी दिखाई नहीं पड़ते हैं। वे जिस करवट सोते थे। उसी करवट उठते थे, कोई चक्कर नहीं।

मैं कहती थी कि मुझे नींद कम आती है, तो मखौल में कह देते थे कि शांतिकुंज का पहरा, तो तुम देती हो, मुझे क्या चिंता है? मैं तो हमेशा निश्चिंतता की नींद सोता हूँ। हाँ, तो मैं यह कह रही थी कि आगे जो उन्होंने स्वप्न के बारे में कहा कि झपकी लग गई, तो मैंने स्वप्न में यह देखा कि मानसरोवर में एक ब्रह्मकमल खिलता हुआ चला आ रहा है और वह पूर्ण रूप से विकसित हो गया और खिलता हुआ चला गया, पक गया, पकने पर जो उसके अंदर बीज पैदा हुए, कमल तो डाली से टूट गया; लेकिन उसमें से जो बीज निकले, वे मानसरोवर में अनेक कमलों के रूप में विकसित होते चले गए।

करोड़ों की तादाद में ब्रह्मकमलों के रूप में विकसित होते चले गए। ऐसा उन्होंने कहा। गुरुजी उस समय क्या कह रहे थे तब समझ में नहीं आया? किंतु मैंने सुना था कि यह यथार्थ है एवं जीवन का सत्य है कि जिस तरीके से व्यक्ति को एक ब्राह्मणोचित जीवन जीना चाहिए, ब्राह्मण की परिभाषा क्या है? यह उन्होंने ही सभी को बताई। ब्रह्मकमल के रूप में संकेत, उसी ब्राह्मण बीज से पैदा हुए ब्रह्मसमुदाय से है।

ब्राह्मण की एक ही परिभाषा है कि ईश्वर की उपासना—सतत वह करता रहे। उसको यह मानना चाहिए कि भगवान हमारे साथ है। चाहे दुनिया वाले हमसे कुछ भी क्यों न कहें; लेकिन हमको मानना चाहिए कि मूलतः हम सभी ब्राह्मण हैं।

किसी समय में हमारे राष्ट्र में ब्राह्मण-पुरोहित का बाहुल्य था, फिर क्या हुआ? जो ब्रह्मबीज थे, वे गलते हुए चले गए। भूमि यदि सही नहीं है, तो उसमें कुछ भी बोया जाएगा, तो नष्ट हो जाएगा। यदि भूमि ठीक है, साफ-सुथरी उपजाऊ है, तो उसमें थोड़ा-सा बीज डालने भर की देरी है, खाद-पानी देने की देर है। फिर देखिए फसल कैसी होती है?

वह ऐसी बढ़िया फसल होती है कि बस, भगवान की खेती को रोज-रोज काटो। जो बोया ही नहीं है, उसे काट कैसे सकते हैं? अपने-अपने चिंतन को, चरित्र को, व्यवहार को, अपने वातावरण को जब ऐसा बनाया नहीं गया है, तो उसे पास कौन बैठने देगा? न ही कोई सुनेगा।

गांधी जी की आवाज को, लाल बहादुर शास्त्री की आवाज को, सुना इसलिए गया कि वे सही अर्थों में ब्राह्मण थे। वह राष्ट्र के पिता थे। फकीर होता है, वह जो कि एक पैसा भी बरबाद नहीं करता, झोली में जो दान पड़ा, गांधी जी का एक पैसा नीचे गिर पड़ा, तो उसे खोजने निकल पड़े। अरे एक पैसा तो हम दे देंगे। एक क्या, आप चार पैसे ले लीजिए?

उन्होंने कहा—सवाल एक पैसे का नहीं है, सवाल उस निष्ठा का है, जो कि व्यक्तियों ने हमारी प्रामाणिकता समझकर हमको एक-एक पैसा श्रद्धा से दिया है। हम अपनी प्रामाणिकता को खो दें क्या? वे बराबर उस भीड़ में खोजते रहे और खोज करके ही निकाला। वह राष्ट्रपिता थे न। गुरुजी कौन हैं?

बेटे! गुरुजी, उस हस्ती का क्या कहना कि जिसने यथार्थ करके दिखा दिया कि ब्राह्मणोचित जीवन कैसा होना चाहिए? जो ज्ञान है, वह भगवान के लिए समर्पित है। शरीर है, वह भी भगवान के लिए है। भगवान माने सारा विश्व।

एक भगवान वह जो चेतना के रूप में है, जो हम आत्मा की मलिनता को निकालते हैं, वह उसी चेतना रूप में हमारे अंदर बैठा-बैठा हमारा भगवान ही निर्देश देकर निकालता है। एक भगवान वह जो समष्टि में संव्याप्त है, सविता—सूर्य के रूप में गतिशील है। मैं इसी के विषय में कह रही थी कि सूर्य जैसा जीवन ब्राह्मण का होना चाहिए।

मैं आपसे कह रही थी कि सूर्य जैसा जीवन, जो ब्राह्मण का होना चाहिए, वह गुरुदेव ने जीवनभर जिया। सूर्य सतत चलता रहता है, एक दिन के लिए भी बंद हो जाए, तो फिर क्या होगा? मैं समझती हूँ कि सूर्य यदि अपनी दीप्तिमान आभा खो दे, बुझ जाए, तो सारे प्राणिमात्र मर जाएँ। जड़ और चेतन में खुशहाली लाने, बाँटने का काम यही सूर्य करता है।

गुरुदेव ने यही कहा है कि जब तक सूर्य जैसी प्रेरणा देने वाला ब्राह्मण वर्ग जिंदा रहेगा, तब तक समाज में भी सतयुगी प्रकाश फैला रहेगा। साथ ही उन्होंने गायत्री महामंत्र के साथ धारण किए जाने वाले यज्ञोपवीत के बारे में बताते हुए कहा कि यह नौ गाँठ वाला धागा अवश्य है, किंतु इस धागे को जब हम धारण करते हैं और व्रत लेते हैं कि हमको ऐसा ही जीवन जीना चाहिए, तो फलित होता है, वह हमारी रक्षा करता है।

मैं आपको यह बताना चाहती थी कि गुरुजी ने उन नौ गुणों को अपने अंदर धारण किया। वह नौ गुण कौन-कौन से थे? सत्य, अहिंसा, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह, शुचिता, शांति, आस्तिकता एवं तितिक्षा जैसे नौ गुण बताए गए हैं। जिसके अंदर ये नौ गुण होंगे, वह ब्राह्मण होगा।

कोई भी क्यों न हो, हमारा जाति से कोई मतलब नहीं है। जब कभी भी ब्राह्मण का अर्थ आए तो आप यह मत जानना कि कोई वर्ग विशेष या जाति विशेष के लिए कहा जा रहा है। वही व्यक्ति संत जीवन जीता है, जो ब्राह्मणों जैसा जीवन जीता है। वही ब्राह्मण होता है, जो इन गुणों को धारण करता है। चाहे वह कोई भी क्यों न हो?

वाल्मीकि ऋषि थे कि नहीं थे? वाल्मीकि ऋषि थे, जिनके यहाँ सीता को रखा गया था। तो उदाहरणों के माध्यम से यह बात भली भाँति समझी जा सकती है। जिस तरीके से बच्चों को पट्टी पर लिखाया जाता है—उन्होंने आम, इमली ऐसे ही समझाया।

उदाहरणार्थ यहाँ शुक्रताल में एक स्वामी जी श्री कल्याण देव जी हैं, अच्छे संत रहे हैं, सौ वर्ष से अधिक उनकी आयु थी। उन्होंने तीस विद्यालय स्थापित किए। कई विद्यालय, हाईस्कूल, जूनियर हाईस्कूल, कॉलेज उन्होंने स्थापित किए। जहाँ कहीं भी वे जाते, एक घर से आधी रोटी लेकर आते। यहाँ पेट नहीं भरा, तो दूसरी जगह चले गए। उसका अर्थ क्या हुआ, परिणाम क्या हुआ?

तपस्या का परिणाम हुआ—वह अनेक गुना श्रद्धा के रूप में उनको मिलता हुआ चला गया और इतनी अपार संपदा उनको मिलती चली गई, जिससे

यह विद्या-विस्तार का तंत्र खड़ा हुआ, किंतु उनके पास सबसे बड़ी दौलत थी उनका ईमान, उनकी आस्था, उनकी श्रद्धा, उनका विश्वास, जिसको उनने सारे समाज को दिया और बनते हुए चले गए।

दूसरा उदाहरण ईश्वरचंद्र विद्यासागर का है। विद्यासागर सात सौ रुपये प्रतिमाह कमाते थे। एक दिन अपनी माँ से कहा—"माँ! हमारी आवश्यकताएँ क्या हैं?" माँ ने जवाब दिया—"बेटे! आवश्यकताएँ कम-से-कम में पूरी हो सकती हैं और इच्छाएँ किसी से भी पूरी नहीं हो सकतीं, चाहे जितना कमा लो, उससे भी नहीं होंगी।" उन्होंने कहा—"माँ! कम-से-कम कितने में गुजारा होगा?" 70 रुपये अपने लिए रख करके बाकी के सारे विद्यार्थियों के अनुदान में लगा दिए। एक भिखारी आया, उसने कहा—"हमको पैसा दीजिए?"

उन्होंने कहा—"तुम हट्टे-कट्टे जवान हो। तुम्हें भीख माँगने की आवश्यकता क्यों पड़ गई? मेहनत-मजदूरी क्यों नहीं करते? भीख तो भगवान से भी मत माँगो, भगवान से माँगो वह शक्ति; ताकि हम सारे संसार में अच्छी परंपराएँ डालते हुए चले जाएँ, प्रेरणाएँ माँगते चले जाएँ न कि भीख।" गुरुजी! डाल दो हमारी झोली में।

बेटा! झोली में भीख डालें बेटे की, तो जब बेटा बड़ा हो जाएगा तो? बुढ़ापे में ऐसा लगाएगा जूते कि आनंद आ जाएगा और सारी जो कमाई है, वह बुढ़ापे की सारी ले जाएगा। आज के जमाने के जो बेटे हैं, वह सबको मालूम है कि कैसे होते हैं? जोड़े हुए धन को सब खा जाएँगे, चाहे बेटा हो, चाहे साला हो, चाहे जमाई हो, क्यों नहीं लेगा? तेरे साथ कुछ भी जाने वाला नहीं है।

सिकंदर जब मरने लगा, तो उसने कहा दुनियावालो, मेरे हाथ बाहर निकाल देना और कहना यह वही व्यक्ति है, जिसने पैसे के लिए खून-खराबा किया था। आज वह खाली हाथ जा रहा है; ताकि दुनिया के लोगों को नसीहत मिल सके कि यह पैसा हमारे काम नहीं आ सकता। काम आएगी हमारी रूहानी ताकत। भगवान का अनुदान, जो हमें मिल रहा है, वही काम आएगा और कुछ काम नहीं आएगा जरा भी। यह अनेक उदाहरण देकर गुरुदेव ने समझाया।

हजारी किसान का उदाहरण दिया, कई बार दिया जो सभी ने सुना है। एक पिसनहारी मथुरा में हुई है। वह बालपन में विधवा हो गई थी। बहुतों ने कहा—इसका लालन-पालन करेंगे। हमारे पास आ जाइए, बेटी, बहन हम सहयोग करेंगे, पर उसने कहा नहीं, आपकी सहायता की कोई आवश्यकता नहीं।

मेरे दो भाई हैं। कौन-से? कौन-से? ये हैं—एक मेरा हाथ, जो पुरुषार्थ-साधना जुटाएगा, दूसरा परमार्थ करेगा। मुझे फिर किसी की भी आवश्यकता नहीं है। यदि गाँव खुद देता है, मदद करता है, तो एक सहानुभूति हो सकती है। चूँकि मैं एक महिला हूँ, कहाँ जाऊँ? तो आप इतना कर सकते हैं कि आप पीसने के लिए अनाज दें, बदले में आटा या पैसा दें; ताकि मैं अपनी उदरपूर्ति कर सकूँ। पुरुषार्थी महिला हूँ, स्वाभिमानी हूँ, किसी की भीख नहीं चाहिए और यही बच्चो! गुरुजी ने भी किया।

मैं पिसनहारी का उदाहरण देने के बाद दूसरी बात बताऊँगी कि उसने ऐसा क्यों किया? गाँववालों ने दिया, उसने पीसा आटा, जो पैसे बचे, उसमें से मथुरा में परिक्रमा करते समय एक कुआँ पड़ता है, वह कुआँ बनवाया। सारी मथुरा का पानी खारा, जिसमें दाल भी नहीं गलती, लेकिन एक कुआँ है, उसका पानी मीठा है, जहाँ कि बरातें जाती हैं।

अब तो धर्मशालाएँ, होटल बन गए। पहले कहाँ थे? वहाँ बरातें विश्राम करती थीं। जन-समुदाय शांति पाता था। लोगों ने वहाँ चारों तरफ वृक्ष भी लगवा दिए। यह उदाहरण है उदारता का, परमार्थपरायणता का, जो कोई भी अपना सकता है? जो सहृदय होता है, ब्राह्मण होता है, उसी पर यह लागू होता है।

जो ब्राह्मण का जीवन जीता होगा, वही ऐसे कदम उठाएगा। नहीं, तो ऐसे सेठ क्या कहने के? इनकी संपत्ति हमें मिल जाए, तो फिर हम दिखा दें कि लोक क्या होता है? परलोक क्या होता है? क्या होता है बनाना और क्या होता है बिगाड़ना? तू बिगाड़ रहा है, अपने बच्चों को बिगाड़ रहा है, हम सारे संसार को बना रहे हैं, विस्तार करके दिखा रहे हैं, पर क्या करें, दाँत हैं, तो चने नहीं। चने हैं, तो दाँत नहीं। तो बताइए कैसे चलेगा?

यदि हमारे पास होता, तो हम इतना श्रम कराते। हम नहीं कराते। हम भी आपको खूब अच्छी तरह से पुचकार-पुचकार करके पालते। हम क्यों आपसे श्रम कराते? नहीं, हमें आपको फौलाद का बनाना है। आप लोगों को इस तरीके का बनाना है कि जैसे वसिष्ठ जी ने राम-लक्ष्मण समेत चारों भाइयों को बनाया था।

राम, लक्ष्मण, भरत, शत्रुघ्न चारों भाई आश्रम में पढ़ने गए थे, तो लकड़ी तोड़ने से लेकर, सारे आश्रम की सफाई से लेकर, सारा काम वे उनसे कराते थे। उनकी पत्नी जो थीं—अरुंधती, उसने उनसे कहा—इतना कठोर श्रम मत कराइए। वे पुचकारती थीं, उनके सिर सहलाती थीं, तो वे कहते—देवी! यह क्या कर रही हैं? बिगाड़ेंगी क्या? बच्चे के लिए, तो आखिर माँ ही ऐसी दयालु है, जो कि जो दोष-दुर्गुण होते हैं, उन्हें भी सह लेती है।

उनने कहा—देखिए, आप अपना काम करिए। मैं अपना काम करूँगी, मैं इन बच्चों के अंदर करुणा और संवेदना पैदा कर रही हूँ। आप पुरुषार्थ पैदा कर रहे हैं। केवल पुरुषार्थ से काम नहीं चलता, केवल करुणा से भी काम नहीं चलेगा, उसको व्यावहारिक रूप देना पड़ेगा।

उन्होंने कहा—आपका पुरुषार्थ और मेरी संवेदना और मेरी करुणा और मेरा प्यार, इन बच्चों में जान डालेगा। यही डालने के लिए, इसी तथ्य को समझाने के लिए हमने आप लोगों को यहाँ एकत्रित किया है; ताकि हम गुरुदेव का पुरुषार्थप्रधान शिक्षण व मेरे प्यार की शिक्षा को समझा सकें।

गुरुजी से एक बार कहा गया—इतने छात्र पढ़ाते हैं, तो आपको धन की आवश्यकता तो पड़ती होगी न? आप खुलकर के क्यों नहीं कहते? आपके पास धन कहाँ से आता है? उनने कहा कि मेरे पास धन भगवान से आता है। आप भगवान से ले सकते हैं? मैं भगवान से नहीं ले सकता।

आपको व्यापार में फायदा होगा, तभी आप दे सकते हैं और घाटा होगा, तो आप एक पैसा भी नहीं देंगे। मुँह फेरकर चले जाएँगे, लाखों आशीर्वाद आपको मिल चुके; लेकिन आप पर दबोचा पड़े, तो सब भूल जाएँगे, फिर न कोई गुरु है और न कोई चेला। शिष्य भी चालाक होता है। चेला सधा हुआ होता है। बहुत चालाक होता है, किंतु शिष्य माने होता है सधा हुआ शिष्य, वह जो अच्छी परंपराएँ डालने के लिए गुरु का ही अनुकरण करे।

गुरुजी कहते थे कि "**गुरु करिए जान के, और पानी पीजिए छान के।**" इधर जो गुरु चेला हैं, आज सही माने में न जाने कितने वरदान माँगेगा—बेटा-बेटी, व्यापार जो कुछ न माँगे, सो कम है। एकदूसरे को मूँड़ने की प्रक्रिया चलती

रहती है। यह कौन है? यह गुरु और वह चेला तो—'**पानी पीजे छान के, गुरु कीजे जान के।**'

जो उदाहरण पेश किए हैं, वह जो मुझे जिंदगी का अनुभव है कि वह किस स्तर से बढ़ते हुए आज इस स्तर तक बनते चले गए। हमारे यहाँ तपोभूमि जैसा भवन नहीं था। पहले एक थे—भावनगर के सज्जन, जो हमारे ट्रस्टी भी थे। वे पहली बार आए, तो हमारे अखण्ड ज्योति कार्यालय में ही छोटा-सा हमारा मकान है, शायद आपने देखा भी होगा, उसे अब तो लड़के ने सँभलवा लिया है। बड़ा बनवा लिया है। हमारे समय में तो वही था। जब वे आए, तो 51 रुपये दान दिए।

उन्होंने कहा कि जाधव जी! आप मेरे साथ चलिए। साथ ले गए और 51 रुपये की रुई की बंडियाँ होती हैं। देखी हैं आपने। ले जा करके भिखारियों को दे बैठे। यह उन्होंने कहा कि मेरा यह व्यक्तिगत संकल्प है कि मैं अपनी भुजाओं का कमाया हुआ खाऊँगा, दान का नहीं खाऊँगा। मुझे नहीं चाहिए दान, दान चाहिए तब, जब सार्वजनिक क्षेत्र में जाऊँगा, पर माँगूँगा नहीं, कभी भी नहीं माँगूँगा। गल जाऊँगा, पर माँगूँगा नहीं। कभी भी नहीं माँगा।

अभी भी लोग दाँतों तले उँगली दबाकर यह कहते हैं कि इतना विशाल आयोजन, इतनी-इतनी भव्यता, पत्रिका का इतना विशाल पाठक-क्षेत्र, इतने अनुशासित परिजन इन सबके लिए आपके पास खरच कहाँ से आता है? अरे! आपको मालूम पड़ गया, तो आप भी चले जाएँगे, आपको क्यों बता दें, हमारी बैंक कहाँ की है? बैंक में लाखों लिए जो आप बैठे हैं। आपकी जेब से निकाला और उसे काम में ले लिया, कौन रखवाली करेगा इसकी? हमें रखवाली नहीं करनी है।

हमें तो उतना ही चाहिए, जितना हमारी आवश्यकता है, तब हम बैंक से ले लेते हैं। इतनी बैंक तो विश्वभर में कहीं भी नहीं हैं, जो हमारे पास बैंक है। कैसे करोड़पति होते हैं? अरबपति होते हैं, हमने नहीं देखे; किंतु सारे संसार का खजाना हमारे पास है। खजाने के रूप में हमारे यह बालक और बालिकाएँ जो हैं। आज इनकी श्रद्धा देखते ही बनती है।

मैंने उस रोज देखा है, जिस रोज मैं गई थी। मेरी आँखों में आँसू छलछला आए, देखकर के उनको कि बच्चे अपनी कमीजें उतार-उतारकर श्रम कर रहे थे।

कोई फावड़ा चला रहा था और कोई कुदाली चला रहा था, कोई क्या कर रहा था-कोई क्या कर रहा था? मैंने भरपूर उनको हृदय से आशीर्वाद दिया कि भगवान अगर कोई शक्ति हो हमारे अंदर, कोई तप किया हो तो उसका फल इन बालकों को मिले।

मैंने गुरुजी का उदाहरण देते हुए यह समझाया कि ब्राह्मणोचित जीवन कैसा होना चाहिए तो जानिए? उन्होंने तपस्या भी की, उपासना भी, उसका भी हो सकता है, दूसरों का भला करने में उनने उसका भी उपयोग किया हो, किंतु उससे भी ज्यादा जो मैंने गुण बताए हैं, वो उनके अंदर पूर्ण रूप से विद्यमान थे।

जो भी जबान से उनने कहा वह 99 प्रतिशत सही हुआ। एक प्रतिशत की तो मैं कहती नहीं हूँ कि कहीं किसी का दुर्भाग्य ही हो, तो उसके लिए क्या किया जाएगा? भगवान तो हैं नहीं। एक सच्चा ब्राह्मण जो करता है, जो करना चाहिए, वह उनने जीवनपर्यंत तक उसको पूरा किया और अपने द्वारा समझाया कि ब्राह्मणोचित जीवन कैसा होना चाहिए? चिंतन से ही चरित्र बनता है, उसी से व्यवहार बनता है।

दैवी आकांक्षा का ही परिणाम था कि जो उनने सविता देवता के विराटस्वरूप को अंदर समा

लिया था। उस भगवान की चेतना को उन्होंने व्यवहार रूप में उतार लिया। मीरा, कबीर, रैदास के तरीके से कभी पीछे नहीं रहे, आगे ही कदम बढ़ते गए और जिस तरीके से कभी नरसी मेहता की हुंडी भुनी होगी, हमें नहीं मालूम, हमने नहीं देखा; लेकिन गुरुजी की हुंडी ऐसी भुनी कि बेटो! आनंद आ गया। बेटे-बेटियो! हुंडियों के रूप में क्या कहना जैसे जलाराम बापा की कहें, क्या गुरुजी की, अपनी कहें, किस-किसकी कहें? आज एक लड़का आया, बोला कि क्या कमाल हो रहा है?

मैंने कहा देखता जा। क्या हो रहा है? यह सारी-की-सारी वही गुरुसत्ता की शक्ति छाई हुई है, जो किसी के मुँह पर मलीनता भी नहीं है। चेहरा गुलाब के तरीके से खिला है, चाहे उसे रातभर श्रम ही क्यों न करना पड़ा हो? दिन और रात फिर भी गुलाब की तरह से चेहरा। वैसे तो घर में ऑफिस से आते हैं, तो जरा-सा करके ऐसा मुरझा जाते हैं कि जाने क्या हो गया हो? यहाँ क्यों नहीं हो रहा है? घर क्यों लगता है?

इसलिए लगता है कि व्यक्तिगत जीवन नहीं है, यह परोपकार वाला जीवन है। वह स्वार्थ है, यह परमार्थ है। जब परमार्थ समाया होता है, तब थकान क्यों होगी? बिलकुल थकान नहीं आना चाहिए। आगे आने वाले समय में मैं आपसे आशा रखती हूँ कि हमारे बालक, जो यहाँ उपस्थित परिजन हैं, वह ब्राह्मणोचित जीवन जिएँगे, सारे संसार में जिस तरीके से रामकृष्ण परमहंस ने विवेकानंद को बनाया था, वैसे ही विवेकानंद बनेंगे। आप कितने विवेकानंद यहाँ बैठे हैं, कितनी सिस्टर निवेदिता बैठी हुई हैं।

ये लाखों की संख्या में सिस्टर निवेदिता, लाखों की संख्या में विवेकानंद यदि अपनी शक्ति को पहचान जाएँ और उस शक्ति का सही सदुपयोग करें, तो कमाल हो जाए। शक्ति का सदुपयोग नहीं करते, दुरुपयोग करते हैं, तो खाली हाथ रह जाते हैं। सदुपयोग कर लें, तो अपना जीवन भी सार्थक हो जाता है और दूसरों के लिए भी प्रेरणा का स्रोत बन जाता है।

आशा है कि आप दिव्य ज्योति का-सा काम करेंगे। आप स्वयं प्रेरणा लीजिए। दूसरों को प्रेरणा दीजिए। आप स्वयं ऊँचा उठिए और दूसरों को ऊँचा उठाइए। जब आप दूसरों को ऊँचा उठाने लगेंगे, तो स्वतः ही आप ऊँचे उठते चले जाएँगे। आप सबके साथ यही हमारा आशीर्वाद है! इन्हीं शब्दों के साथ मैं अपनी बात समाप्त करती हूँ।

**॥ ॐ शांतिः ॥**

# चंदा वृद्धि की सूचना

**हमारे अखण्ड ज्योति पत्रिका के परिजन-पाठकों को हमें बड़े भारी मन से सूचित करना पड़ रहा है कि कागज के मूल्यों एवं छपाई के अन्य साधनों के मूल्यों में बेतहाशा वृद्धि होने के कारणों से अखण्ड ज्योति का चंदा ( सदस्यता शुल्क ) जनवरी—2023 से बढ़ाना पड़ रहा है। बढ़ी हुई दरें इस प्रकार से हैं—**

| | |
|---|---|
| **1. वार्षिक चंदा ( भारत में )** | **300 रुपये** |
| **2. आजीवन 20वर्षीय चंदा ( भारत में )** | **6000 रुपये** |
| **3. वार्षिक चंदा ( विदेश में )** | **2800 रुपये** |

***अँगरेजी द्विमासिक अखण्ड ज्योति पत्रिका की बढ़ी हुई दरें—***

| | |
|---|---|
| **1. वार्षिक चंदा ( भारत में )** | **170 रुपये** |
| **2. वार्षिक चंदा ( विदेश में )** | **1500 रुपये** |

**आशा ही नहीं, विश्वास है कि परिजन-पाठक इस प्राण-प्रवाह को गतिशील बनाए रखेंगे।** ***—व्यवस्थापक***

# गीता में भक्त, भक्ति व भगवान की महिमा
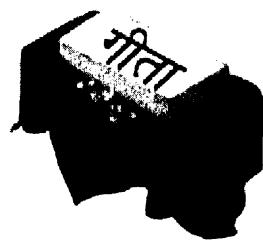
विश्वविद्यालय परिसर में इस बार के शारदीय नवरात्र के संध्याकालीन अवसर पर कुलाधिपति डॉ० प्रणव पण्ड्या द्वारा जो उद्‌बोधन दिया गया, उसका विषय था—'श्रीमद्भगवद्गीता में भक्त-भक्ति-भगवान की महिमा, व्याख्या और चिंतन'।

श्रीमद्भगवद्गीता का गायन, उसके श्लोकों पर चर्चा व व्याख्या करना—ये हर शारदीय नवरात्र में कहने की एक पुण्य परंपरा रही है। वर्षों से इस परंपरा का निर्वहन होता रहा है और परंपरा के इसी क्रम में इस बार के शारदीय नवरात्र में जिन श्लोकों का गायन व उन पर विचार-मंथन किया गया, वे हैं—श्रीमद्भगवद्गीता के 9वें अध्याय (राजविद्याराजगुह्ययोग) के 22वें श्लोक से लेकर 30वें श्लोक तक के नौ श्लोक।

गीता के 9वें अध्याय को भगवान ने पहले ही कहा है—राजविद्याराजगुह्ययोग, यानी कि बड़े ही गुप्त, व गुह्य योग की इसमें चर्चा है और उसमें जिन नौ श्लोकों की बात कही गई है,उनका संबंध है—**भक्त, भक्ति और भगवान से।**

अगर भक्त का परिचय जानना हो, तो कैसे जानें? भक्त के पास संपदा क्या है? हम किसे कहेंगे भक्त?

भक्त की संपदा है—षट् संपत्ति। इसमें पहली संपत्ति है—शम, शम का अर्थ है—मनोनिग्रह। दूसरी संपत्ति है—दम, दम का अर्थ है—इंद्रियनिग्रह। तीसरी संपत्ति है—उपरति, इसका अर्थ है—निवृत्ति, वैराग्य और इसके बाद चौथी संपत्ति है—तितिक्षा यानी सहनशीलता, प्रसन्नतापूर्वक सुख-दु:ख को सहन करना।

पाँचवीं संपत्ति है—श्रद्धा यानी शास्त्र-संत-गुरु-भगवान के प्रति गहन श्रद्धा। छठी संपत्ति है—समाधान, शंकाओं का निराकरण। जो ऊपर की पाँच संपत्तियाँ पा लेते हैं, वो छठी संपत्ति तक स्वयं ही पहुँच जाते हैं। ये भक्त की संपत्ति हैं और भक्त का परिचय क्या है? तो भक्त का परिचय है—भगवान का सतत स्मरण और उनमें समर्पण।

अब बात करते हैं—भक्ति की, भक्ति क्या है? भक्ति क्या चीज है? भक्ति वो है, जो हमें हमारे भगवान से जोड़ती है। भक्ति का अर्थ यों तो भजन कहा गया है, नारद भक्तिसूत्र में भक्ति को प्रेमस्वरूपा और अमृतस्वरूपा कहा गया है और उसमें भक्ति के अनेक रूप, अनेक स्वरूप बताए गए हैं। आचार्य रामानुज, आचार्य निंबार्क और महर्षि दयानंद की अगर हम बात सुनें, तो उनके अनुसार भक्ति क्या है?

जिस प्रकार अग्नि के पास जाकर शीत की निवृत्ति और उष्णता का अनुभव होता है, उसी प्रकार प्रभु के पास पहुँचकर दु:ख की निवृत्ति तथा आनंद की उपलब्धि होती है। परमेश्वर के समीप होने से सब दोष-दु:ख छूट जाते हैं और परमेश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव के सदृश जीवात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव पवित्र हो जाते हैं।

परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना व उपासना से आत्मा का बल इतना बढ़ता है कि पर्वत के समान दु:ख प्राप्त होने पर भी वह न तो घबराता है और

न ही परेशान होता है, बल्कि सहज भाव से सहन कर जाता है, ये भक्ति की महिमा है।

भक्ति वो है, जो हमें भगवान से जोड़ती है, भक्ति की शुरुआत उस समय से होती है, जब हम भगवान की ओर उन्मुख होते हैं और जैसे-जैसे हमारा स्मरण प्रगाढ़ होता है, जैसे-जैसे हमारा समर्पण प्रगाढ़ होता है, वैसे-वैसे हमारी भक्ति भी प्रगाढ़ होती है।

अब प्रश्न यह है कि भगवान किसको कहते हैं? भगवान शब्द हमने बहुत सुना है। भगवान कहते हैं—भर्ग को, ये भग् धातु से बना है और भक्त वो, जिसके पास षट्संपत्ति हों और भगवान वो हैं, जिनके पास छह ऐश्वर्य (षडैश्वर्य) हैं। षडैश्वर्य में क्या होता है? पहला—ऐश्वर्य, दूसरा—वीर्य, तीसरा—स्मृति, चौथा—यश, पाँचवाँ—ज्ञान और छठा—धर्म है।

छठी जगह में कहीं पर धर्म की चर्चा की गई है और कहीं पर विज्ञान की। जिसके पास ये षडैश्वर्य हैं, वही भगवान है तो भगवान षडैश्वर्यसंपन्न, प्रेम से संपन्न और भक्त—षट्संपत्ति से संपन्न होता है। भक्ति वह है, जो इन दोनों को जोड़ती है। वो सारी प्रक्रियाएँ भक्ति में आती हैं।

महर्षि नारद ग्यारह प्रकार की भक्ति बताते हैं, भागवत में उनकी संख्या नौ कही गई है, रामचरितमानस में भी तुलसीदास जी महाराज नौ प्रकार की भक्ति की चर्चा करते हैं, तो भक्ति वो है, जिससे प्रभु हमसे जुड़ जाएँ और हम प्रभु से जुड़ जाएँ। हम विभक्त न हों, हम भक्त हों। जो विभक्त नहीं है, वही भक्त है।

**प्रथम दिवस**—इस दिन गीता के नवें अध्याय के 22वें श्लोक पर चर्चा की गई—

**अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते।**
**तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम्॥**

*(9/22)*

गीता का यह श्लोक भगवान का भक्त के लिए आश्वासन है और अपने इस आश्वासन के साथ भगवान, भक्त व भक्ति को भी परिभाषित करते हैं और कहते हैं कि जो अनन्यप्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर का निरंतर चिंतन करते हुए निष्काम भाव से मुझे भजते हैं, उन नित्य निरंतर मेरा चिंतन करने वाले भक्तों का योगक्षेम मैं स्वयं प्राप्त कर लेता हूँ, यानी भगवान स्वयं उनका भार वहन करते हैं। बस, इसके लिए शर्त क्या होनी चाहिए? हमें भक्त होना चाहिए।

भक्त अपने जीवन से, अपने आचरण से भक्ति को परिभाषित करता है और अपनी भावनाओं से भगवान को परिभाषित करता है। भगवान और भक्त का प्रेम अद्भुत है। भगवान और भक्त का मिलन अद्भुत है और भगवान-भक्त का जीवन अद्भुत है।

जिसे भगवान भक्त मानते हैं, जिसे भगवान भक्त के रूप में स्वीकारते हैं, उसके लक्षण मूलतः दो ही बातों में हैं, अनन्याशिंचत यानी अनन्य चित्त और पर्युपासना—चारों ओर से उपासना। फिर उनका वचन है—**योगक्षेमं वहाम्यहम्,** मैं वहन करूँगा, तुम्हारा योगक्षेम। बस, हृदय में भगवान के लिए परम प्रतीति, परम प्रीति होनी चाहिए।

**अनन्याशिंचत** यानी उस चित्त में 'अब कोई और नहीं, उस चेतना में कोई और नहीं, उस चिंतन में अब कोई और नहीं, सिर्फ भगवान हैं। केवल चेतना व चिंतन में ही नहीं, केवल अंतरस्थिति में ही नहीं, बाहर स्थिति में भी कोई और नहीं है, हमारी उपासना ही हमको चारों ओर से घेरे हुए है—ये उपासना तब तक नहीं होती, जब तक कि वासना मन में रहती है। वासना और उपासना, साथ-साथ नहीं चला करते। वासना चलती है तो उपासना नहीं चलती है और उपासना चलती है तो वासना नहीं चलती है।

**पर्युपासते**—यानी सब ओर से उपासना ने हमें घेर रखा है। अब वासना के प्रवेश का, वासना के आने-जाने का कोई मार्ग ही नहीं है। बात तो पर्युपासते की है, इसमें आवागमन है कहाँ? इसमें चारों तरफ से ऐसा प्रबल कवच है उपासना का, कि वासना के लिए इसमें कोई छिद्र ही नहीं है, इसमें वासना घुस ही नहीं सकती—अब चाहे जीवन में कितने भी अभाव हों, निर्धनता हो या फिर चाहे कैसी भी परिस्थिति हो।

बात ये है कि **अनन्याश्चिन्तयन्तो मां,** चित्त अनन्य होना चाहिए। **पर्युपासते**—केवल उपासना, उसमें वासना नहीं। ऐसे भक्तों का हाथ थामे बिना भगवान रहते नहीं हैं।

**द्वितीय दिवस**—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के नवें अध्याय के 23वें श्लोक की व्याख्या की गई। यह श्लोक है—

**येऽप्यन्यदेवता भक्ता यजन्ते श्रद्धान्विताः।**
**तेऽपि मामेव कौन्तेय यजन्त्यविधिपूर्वकम्॥**

*(9/23)*

अर्थात हे अर्जुन! यद्यपि श्रद्धा से युक्त जो सकाम भक्त दूसरे देवताओं को पूजते हैं, वे भी मुझको ही पूजते हैं, किंतु उनका वह पूजन अविधिपूर्वक अर्थात अज्ञानपूर्वक है।

भगवान यह भली भाँति जानते हैं कि जो देवताओं की पूजा होती है, वह विधिपूर्वक होती है, लेकिन वे उसे अविधि कहते हैं; क्योंकि देवताओं की विधि-विधान के साथ पूजा करने के पीछे मनुष्य का सकाम भाव निहित होता है और विधिपूर्वक पूजा करने का उसका उद्देश्य अपनी तरह-तरह की सांसारिक कामनाओं की पूर्ति होता है।

जब तक मनुष्य सांसारिक कामनाओं में उलझा रहता है, तब तक वह अज्ञान में ही जीता है और इस कारण ज्ञान उसके भीतर प्रकट नहीं हो पाता। चूँकि अज्ञान में अविधि ही हो सकती है और ज्ञान में ही विधि का जन्म होता है। इसलिए भगवान ऐसे विधि-विधान से युक्त पूजन को अविधि कहते हैं।

देवताओं की विधिपूर्वक की गई पूजा को अविधिपूर्वक कहने का एक कारण यह भी है कि पूजा के जो विधि-विधान हमें संसार से जोड़ते हैं, वो सब भगवान की दृष्टि में अविधि के अंतर्गत आते हैं और जो विधि-विधान हमें परमात्मा से गहराई से जोड़ते हैं, वो वास्तव में सही विधि हैं, लेकिन चूँकि परमात्मा से जुड़ने का कोई एक निश्चित विधि या विधान नहीं है, इसलिए भगवान विधि-विधान को अविधि कहते हैं।

**तृतीय दिवस**—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के नवें अध्याय के 24वें श्लोक की व्याख्या की गई, यह श्लोक है—

**अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च।**
**न तु मामभिजानन्ति तत्त्वेनातश्च्यवन्ति ते॥**

*(9/24)*

यहाँ पर भगवान स्वयं अपना परिचय देते हैं कि आखिर मैं कौन हूँ? **अहं हि सर्वयज्ञानां भोक्ता च प्रभुरेव च**—मैं ही संपूर्ण यज्ञों का भोक्ता और स्वामी हूँ, परंतु वे मुझ परमेश्वर को तत्त्व से नहीं जानते हैं और इसी से गिरते हैं व पतित होते हैं (अर्थात पुनर्जन्म को प्राप्त होते हैं)। यहाँ पर वे कौन हैं, जो पतित होते हैं? वे यानी जो भक्त भूलभुलैया में भटकते रहते हैं।

यहाँ पर दो बातें हैं, पहली बात है—भक्त बनना और दूसरी बात है—भगवान को पहचान लेना। हम जो यज्ञ-कर्मकांड करते हैं, उनमें यज्ञ का मूल भाव है—इदम् न मम—यह मेरे लिए नहीं है, यह मेरे प्रभु के लिए है। मैं स्वामी नहीं हूँ, मैं किसी को कुछ देने वाला नहीं हूँ।

भक्त अपने को कसता रहता है—**यतय: संशतव्रता:** निष्कामता उसके अंदर रहती है, उपासना उसके अंदर रहती है। एक जगह भगवान कहते हैं—**पर्युपासते**—भक्त चारों तरफ उपासना से घिरा रहता है, वासना से क्षीण रहता है। वासना जिसमें डेरा डाले रहती है वो भक्त बन ही नहीं सकता, उसके लिए ऐसी संभावनाएँ ही नहीं हैं कि वह भक्त बने।

भगवान कहते हैं कि जान सको तो जानो। एक रास्ता उत्थान की ओर जाता है—जीव के शिव बनने की ओर, नर-से-नारायण बनने की ओर। एक रास्ता पतन की ओर जाता है, जिसमें पता नहीं तुम क्या बन जाओगे, नर-पशु, नर-पिशाच या नर-कीटक; क्योंकि पतन का कोई ठिकाना नहीं है, कोई उसका विराम नहीं है।

इसलिए भगवान ने यहाँ इस श्लोक में अपना परिचय दिया है और उसमें पहली बात उन्होंने कही है कि यज्ञ को जानो। यहाँ पर भगवान केवल एक यज्ञ को जानने की बात नहीं कहते, बल्कि कहते हैं कि **सर्वयज्ञानां**—सभी यज्ञों को जानो, फिर चाहे वह द्रव्य यज्ञ हों, तप यज्ञ हों, योग यज्ञ हों, स्वाध्याय यज्ञ हों या ज्ञान यज्ञ हों, कोई भी यज्ञ हों। फिर यह जानो कि सभी यज्ञों का फल मैं ही हूँ।

भगवान एक के बाद एक सीढ़ी चढ़ते जाते हैं, इस सीढ़ी के क्रम में पहले नंबर एक पर है—द्रव्य यज्ञ, आप पदार्थ से शुरू हुए। फिर क्रमिक रूप से सूक्ष्म हुए—तप यज्ञ। इससे सूक्ष्मपरिष्कार होने लगा—योग यज्ञ। योग यज्ञ करते हुए समझ आने लगी कि प्रभु ऐसे हैं, तो स्वाध्याय यज्ञ और समझ पक्की हो गई, आत्मप्रतिष्ठा हो गई तो ज्ञानयज्ञ।

जब आपका बोध पक्का हो गया, समझ पक्की हो गई—तब भगवान यह यात्रा कराते हैं। यह यात्रा है—जीवन के सम्यक संबुद्ध होने की यात्रा, जो निष्कामता से शुरू होती है और संपूर्ण बोध में परिपूर्ण होती है, जिसका आरंभ प्रक्रियाओं से होता है और जिसका अंत बोध की समाधि में होता है, बुद्धत्व में होता है। यह बुद्धत्व की प्रतिष्ठा की यात्रा है। इस तरह विभिन्न तरह के जो यज्ञ हैं, जो स्थूल से सूक्ष्मक्रम में हैं।

जो द्रव्य यज्ञ नहीं करता, वो तप यज्ञ नहीं कर सकता। जो तप यज्ञ नहीं करता, वो योग यज्ञ नहीं कर सकता। जो योग यज्ञ नहीं करता, वो स्वाध्याय यज्ञ नहीं कर सकता और जो स्वाध्याय यज्ञ नहीं करता, वो बोध में प्रतिष्ठित नहीं हो सकता।

स्वाध्याय से ही विकृतियों का निराकरण, निवारण होता है और स्वाध्याय से ही बोध की संपूर्णता आती है। यह संपूर्णता की बात है, सम्यक संबोध होने की यात्रा है, सम्यक दृष्टि, सम्यक जीवन पाने की यात्रा है। भगवान इस अनूठी यात्रा को कहते हैं कि इस यात्रा में मैं तुम्हारे साथ हूँ, मैं ही तुम्हारी अंतिम गति हूँ और मैं ही तुम्हारा गंतव्य हूँ।

**चतुर्थ दिवस**—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के नवें अध्याय के 25वें श्लोक की व्याख्या की गई। यह श्लोक है—

**यान्ति देवव्रता देवान्पितृन्यान्ति पितृव्रता:।**
**भूतानि यान्ति भूतेज्या यान्ति मद्याजिनोऽपि माम्॥**

*(9/25)*

अर्थात देवताओं को पूजने वाले देवताओं को प्राप्त होते हैं, पितरों को पूजने वाले पितरों को प्राप्त होते हैं, भूतों को पूजने वाले भूतों को प्राप्त होते हैं और मेरा पूजन करने वाले भक्त मुझको ही प्राप्त होते हैं, उनका पतन नहीं होता है।

गीता के इस श्लोक में भगवान के पूजन की, भगवान के यजन की, भगवान में चित्तवृत्तियों के समर्पित होने की, उनकी ओर अभिमुख होने की महिमा का गान है।

भगवान कहते हैं कि सभी श्रद्धा से भरे हुए हैं, लेकिन श्रद्धा का उन्मुखीकरण, श्रद्धा किस ओर है—ये बहुत गहनता का विषय है, ज्ञान का विषय है, बोध का विषय है, चिंतन का विषय है।

अगर हम कहें कि मनुष्य जीवन एक चौराहा है तो इसे सच ही मानना पड़ेगा, इसमें आश्चर्य की कोई बात नहीं है। हम जहाँ पर खड़े हुए हैं, वहाँ से हमारी यात्रा किसी भी दिशा में जा सकती है—जैसे हम चौराहे पर खड़े हों तो हमारी यात्रा चार मार्गों की ओर हो सकती है।

उसी तरह मनुष्य जीवन से होकर जाने वाले चार मार्ग भगवान गिनाते हैं कि **यान्ति देवव्रता देवान्**—एक मार्ग देवों की ओर जाता है, अगर आप देवों का यजन करते हैं, आप देवों के प्रति श्रद्धा से भरे हैं और आपके शुभ कर्मों का अंबार लगा हुआ है तो आप देवों की ओर, देवलोक की ओर जाते हैं।

**पितृयान्ति पितृव्रताः**—पितृ, पितर कौन हैं? हमारे पूर्वज हैं, पुरखे हैं और अगर आप पितरों को मानते हैं, पितरों के प्रति श्रद्धावान हैं, पितरों के प्रति उन्मुख हैं, पितरों के प्रति आपके कर्म का प्रवाह है तो आप पितरों की ओर भी जा सकते हैं।

**भूतानि यान्ति भूतेज्या**—और यदि आप तंत्र की ओर, भूतों की ओर, प्रेतों की ओर उन्मुख हैं तो आप भूत-प्रेतों की ओर भी जा सकते हैं, किंतु यदि आप मेरी ओर उन्मुख हैं, यदि आपकी मेरे प्रति श्रद्धा है, आपका मेरे प्रति समर्पण है, मेरे प्रति भाव हैं तो बिना किसी रुकावट के मेरी ओर भी आ सकते हो तो यह चौथा मार्ग है।

इस तरह पहला मार्ग है—देवों की ओर, दूसरा मार्ग है—पितरों की ओर, तीसरा मार्ग है—भूत-प्रेतों की ओर और चौथा मार्ग है—मेरी ओर। ये चार मार्ग कहाँ से खुलते हैं? मनुष्य जीवन से।

**पंचम दिवस**—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के नवें अध्याय के 26वें श्लोक की व्याख्या की गई। यह श्लोक है—

**पत्रं पुष्पं फलं तोयं यो मे भक्त्या प्रयच्छति।**
**तदहं भक्त्युपहृतमश्नामि प्रयतात्मनः॥**

*(9/26)*

अर्थात जो कोई भी भक्त मेरे लिए प्रेम से पत्र, पुष्प, फल, जल आदि अर्पण करता है, उस शुद्ध बुद्धि निष्काम प्रेमी भक्त का प्रेमपूर्वक अर्पण किया हुआ वो पत्र-पुष्पादि मैं प्रेमसहित ग्रहण करता हूँ, खाता हूँ। इस प्रकरण में भगवान भक्ति की चर्चा करते हैं।

भक्ति वो है, जिसने भगवान को भक्त से जोड़ा हुआ है, भगवान के साथ भक्त को संयुक्त किया है और भक्त वो है, जो अब विभक्त नहीं है, बँटा हुआ नहीं है, जिसकी अपनी हिस्सेदारी नहीं है, जिसका अपना सब कुछ भगवान का है और भगवान का सब कुछ उसका है। जिसकी साझेदारी, जिसकी स्वीकृति, जिसकी स्वीकार्यता भगवान के लिए है और भगवान की स्वीकार्यता उसके लिए है।

यहाँ पर हमारे व्यक्तित्व की दो बातें हैं—पहला कि आप क्या हैं और दूसरा कि आपके पास क्या है और किस रूप में है—आपकी संपदा, आपकी समृद्धि, आपकी हैविंग्स, आपकी बिलान्गिंग्स—आपके पास क्या है?

भगवान कहते हैं कि पहली बात यह है कि आप भक्त हैं या नहीं और अगर भक्त हैं तो बस, इतना ही परिचय पर्याप्त है। भगवान कहते हैं कि फिर हमारा भक्त हमें क्या देता है—पत्र देता है, पुष्प देता है, फल देता है, जल देता है या कुछ नहीं देता है हमारे पास बैठ करके पुकारता है, प्रार्थना करता है, वही मैं प्रेमसहित ग्रहण करता हूँ।

इसलिए पहली सबसे महत्त्वपूर्ण बात है—भक्त होना। अगर हम भक्त हैं तब बात आगे बढ़ेगी

और अगर हम भक्त ही नहीं हैं तो फिर इसका मतलब हमारे पास भक्ति नहीं है। भक्त का परिचय क्या है ? भक्त का परिचय उसकी श्रद्धा से होता है। श्रद्धा उसका एक परिचय पत्र है और समर्पण है भक्त की संपदा।

**षष्ठ दिवस**—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के नवें अध्याय के 27वें श्लोक में भक्त के समर्पण के बारे में विचार-विमर्श हुआ। यह श्लोक है—

**यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोषि ददासि यत्।**
**यत्तपस्यसि कौन्तेय तत्कुरुष्व मदर्पणम्॥**

*(9/26)*

अर्थात हे अर्जुन तू जो कर्म करता है, जो खाता है, जो हवन करता है, जो दान देता है और जो तप करता है—वो सब मेरे को अर्पण कर।

साधक की संपत्ति, भक्त की संपत्ति उतनी ही होती है, जितना कि वो भगवान में समर्पित होता है। भगवान में समर्पण भक्त की संपदा है। भक्त का सब कुछ है—समर्पण।

श्रीरामचरितमानस में गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज कहते हैं—

**मैं अरु मोर तोर तैं माया।**
**जेहिं बस कीन्हे जीव निकाया॥**

मैं और मेरा, तू और तेरा—इसी में सब कुछ बँधा हुआ है, इसी में सब कुछ गुँथा हुआ है। इसलिए इसके धागे जरा कम कर। स्वार्थ से मुक्त हो जा, अहंकार से मुक्त हो जा। कहते हैं कि स्वार्थ और अहंकार से मुक्ति ही तो आपको व्यक्ति से विराट बनाती है। यह बात थोड़ी कठिन है, थोड़ी मुश्किल है, लेकिन भगवान इस प्रक्रिया को बड़े आसान ढंग से, बड़े तरीके से, बड़े सिलसिलेवार, बड़े क्रमिक रूप से बताते हैं।

समर्पण के क्रम का जो तरीका है, वो ये है—(1) यत्कुरुष्य (जो कर्म किया, उसका समर्पण करना)पहला, (2) यदश्नासि (जो भी भोजन रूप में ग्रहण किया, उसे समर्पित करना) दूसरा, (3) यज्जुहोषि (जो हवन किया, उसे समर्पित करना) तीसरा, (4) ददासि यत् (जो दान दिया, उसे समर्पित करना) चौथा और (5) यत् तपस्यसि (जो तप किया, उसे समर्पित करना) पाँचवाँ।

अगर हम देखें तो समर्पण का ये क्रम, क्रमिक रूप से हमारे पंचकोशों का अनावरण है, पंचकोशों की मलिनताओं को धोने का उपाय है। भगवान क्रमिक रूप से हमारी क्षमताओं को, हमारी शक्तियों को, हमारी जीवनचर्या को, हमारे आचरण को, हमारी जीवन की धारा को—अपनी ओर मोड़ने का एक गंभीर प्रयास कर रहे हैं। हमारे जीवन में गंगा की धारा को लाने का प्रयास कर रहे हैं। मलिनताओं को धोने का प्रयास कर रहे हैं।

समर्पण घाटे का सौदा नहीं है—समर्पण मुनाफे का सौदा है। इससे नर सहज ही नारायण बन जाता है। भगवान सहज ही उसमें विराजमान होते हैं।

**सप्तम दिवस**—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के 9वें अध्याय के 28 वें श्लोक की व्याख्या की गई। भगवान इस श्लोक में बड़ी ही मार्मिक बात करते हुए कहते हैं—

**शुभाशुभफलैरेवं मोक्ष्यसे कर्मबन्धनैः।**
**सन्नयासयोगयुक्तात्मा विमुक्तो मामुपैष्यसि॥**

*(9/28)*

अर्थात इस प्रकार, जिसके समस्त कर्म मुझ भगवान को अर्पण होते हैं—ऐसे संन्यासयोग से युक्त चित्तवाला तू शुभाशुभ फल रूप कर्मबंधन से मुक्त हो जाएगा और उनसे मुक्त होकर मुझको ही प्राप्त होगा।

इस श्लोक के माध्यम से भगवान एक आत्यांतिक आंतरिक क्रांति हमारे अंदर घटित कर रहे हैं। भगवान का कहना है कि वेश को न पकड़ो, क्रियाओं को न पकड़ो चेतना को पकड़ो, चिंतन

को पकड़ो, चित्त में होने वाले परिवर्तनों को पकड़ो। जो मैल धोना है वो देह का नहीं है, वो चित्त का है और धुलाई होने के बाद उसमें संन्यास योग प्रकट होना है। अगर यह प्रकट हो गया तो भगवान कहते हैं कि तुम मुझमें रहोगे और मैं तुममें रहूँगा।

**अष्टम दिवस**—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के नवें अध्याय के 29वें श्लोक की व्याख्या की गई।

इस प्रसंग में भगवान अपना परिचय देते हुए कहते हैं—

**समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।**
**ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥**
*(9/29)*

अर्थात मैं सभी प्राणियों में समभाव से व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है और न प्रिय है, परंतु जो भक्त मुझे प्रेम से भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष रूप में प्रकट हूँ।

भगवान वैसे तो सब जगह समान रूप से मौजूद हैं, लेकिन उनका प्रकटीकरण कहीं-कहीं है यानी उनके प्रकट होने में भेद है, भगवान में भेद नहीं है और भगवान सर्वत्र हैं। जैसे—वातावरण में अग्नि सब जगह है, लेकिन जहाँ आप घर्षण करोगे, वहीं अग्नि प्रकट होगी।

वैसे ही भगवान कहते हैं—समोऽहं, मैं सब जगह बराबर-बराबर हूँ, न कहीं कुछ कम और न कहीं कुछ ज्यादा, लेकिन प्रकट नहीं हूँ। अगर मुझे (भगवान को) प्रकट करना हो, तो इसके लिए भक्ति चाहिए, प्रेम चाहिए।

**नवम दिवस**—इस दिन श्रीमद्भगवद्गीता के नवें अध्याय के 30वें श्लोक की व्याख्या की गई। यह श्लोक है—

**अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।**
**साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः॥**
*(9/30)*

अर्थात यदि कोई अतिशय दुराचारी भी अनन्यभाव से मेरा भक्त होकर मुझको भजता है, तो वह साधु ही मानने योग्य है; क्योंकि वह यथार्थ निश्चयवाला है अर्थात उसने भली भाँति निश्चय कर लिया है कि परमेश्वर के भजन के समान अन्य कुछ भी नहीं है।

दुराचारी भक्त को साधु क्यों मानना? क्योंकि भक्ति वो रसायन है, जो मानव चेतना में, जीवन चेतना में रूपांतण करने में सक्षम है। भक्ति के बारे में यह अनुभव है कि ये रूपांतरण कर सकने में समर्थ है। इससे जीवन का स्वाद बदल जाता है, जीवन की साख बदल जाती है, जीवन का रंग बदल जाता है, कुछ ऐसे ही, जैसे दूध जब दही में बदल जाता है, तब फिर उसमें दूध नहीं खोजा जा सकता; क्योंकि उसका अब रूपांतरण हो गया है। इसी तरह दुराचारी व्यक्ति के जीवन में भी यदि भक्ति का प्रवेश हो जाता है, तो उसका जीवन आमूलचूल परिवर्तित हो जाता है, इसलिए फिर वह साधु मानने योग्य है।

इस तरह शारदीय नवरात्र के इन नौ दिनों के अवसर में भक्त, भक्ति व भगवान की महिमा को गीता के नवें अध्याय के नौ श्लोकों के माध्यम से गहराई से समझाने का प्रयास किया गया। ❑

**कलकत्ता (कोलकाता) के सोमानी जी के पिता का देहांत हुआ तो उन्होंने उनकी स्मृति में कोई प्रतीक बनवाने का निश्चय किया। जान-पहचान वालों, मित्रों-संबंधियों ने मंदिर, कुआँ, धर्मशाला से लेकर प्रशस्तिचिह्न बनवाने तक का सुझाव दिया, पर सोमानी जी की इच्छा कुछ ऐसा बनवाने की थी, जिससे अधिकाधिक लोग लाभान्वित होकर जीवन की सही दिशा पा सकें। एक वर्ष तक सोचने-विचारने के पश्चात उन्होंने पुस्तकालय बनाने का निश्चय किया और उसे बनवाकर उन्हें अत्यधिक आंतरिक संतुष्टि मिली। ज्ञान का उपहार ही सबसे बड़ी धरोहर है, इससे अनेक दिशाहीनों को जीवन की राह मिल जाती है।**

अपनों से अपनी बात

# प्राणवान हो गायत्री-उपासना

हमारे इस शरीर का वास्तविक मूल्य, शरीर के भीतर प्रवाहित हो रही प्राणचेतना के कारण है। यदि इस शरीर से प्राण निकल जाएँ तो वही शरीर, जिसके सुख, कामनाओं, वासनाओं की पूर्ति के लिए हम दर-दर भटकते हैं, न जाने कौन-कौन से कुकृत्य हमको करने पड़ते हैं—उसी शरीर को नष्ट करने की, जलाने की व्यवस्था हमें बनानी पड़ जाती है।

सिद्धांत स्पष्ट है कि हमारे जीवन में मूल्य शरीर का कम और प्राण का ज्यादा है। प्राणों के निकलते ही हम प्राणी नहीं रह जाते हैं, बल्कि लाश बन जाते हैं। जो मनुष्य शरीर की वास्तविक संपदा है, वो वस्तुस्थिति में इसके अंदर प्रवाहित हो रही प्राणचेतना के कारण ही है।

हम कल्पना करके देखें कि यदि हमारे भीतर प्राण ही न रह जाएँ तो हमारा सुंदर शरीर, योजनाएँ बनाने वाला मस्तिष्क—ये सबके सब एक ही स्थान पर धरे रह जाएँगे। जो हमारी मूल शक्ति है, वो प्राण की शक्ति है और यह प्राण की शक्ति जिसमें जितनी ज्यादा है, वो व्यक्ति उतना ही ज्यादा प्राणवान हो जाता है। कोई व्यक्ति यदि मनस्वी है, तेजस्वी है, ऊर्जावान है, प्रतिभाशाली है तो हम यह भी कहते हैं कि वह व्यक्ति बड़ा प्राणवान है।

उदाहरण के तौर पर छोटे-से बच्चे को यदि हम देखें तो उसके अंदर का प्राण का प्रवाह उसे एक स्थान पर रुकने ही नहीं देता, पर जैसे-जैसे व्यक्ति की मृत्यु समीप आती है और प्राण चुकता है तो उसी व्यक्ति के लिए एक-एक कदम उठाना भारी पड़ जाता है। इन सारी बातों का सार एक ही है कि मानवीय जीवन की मूल संपदा प्राणशक्ति के रूप में है। यह ही हमारी वास्तविक संपत्ति है। जो भी हमें समृद्धि मिलती है, सफलता मिलती है, संपदा मिलती है—वो सब प्राणशक्ति के आधार पर मिलती है।

गायत्री के महामंत्र का मूल उद्देश्य—हमारे भीतर प्राणशक्ति का अभिवर्द्धन करना है। इस तथ्य के केंद्र में जाने की कोशिश यदि हम करें तो हमें यह देखना होगा कि गायत्री मंत्र के माध्यम से हम उपासना किसकी करते हैं।

गायत्री मंत्र के अधिष्ठाता देवता भगवान सूर्य हैं। यह सर्वविदित है कि इस संपूर्ण सृष्टि को प्राण भगवान सूर्य से मिलता है, सविता देवता से मिलता है। विज्ञान की दृष्टि से भी यही सत्य है कि जीवन का आधार सूर्य है और अध्यात्म की दृष्टि से भी यही सत्य है कि '**सविता सर्वस्य प्रसविता**'—इस सृष्टि को जन्म देने वाली शक्ति सूर्य ही हैं।

हम कल्पना करके देखें कि यदि एक दिन भगवान सूर्य उदय न हों, उनका प्रकाश न हो, ऊर्जा न हो, ऊष्मा न हो तो न तो प्रकाश का संश्लेषण होगा, न औषधियाँ, वनस्पतियाँ और अनाज उत्पन्न होंगे, न नदियाँ बहेंगी, न वर्षा होगी—ये सब खतम हो जाएँगे। जिस जीवन को आज हम जानते हैं, उस जीवन के संपूर्ण स्वरूप का पूर्णरूपेण अंत हो जाएगा। इस दृष्टि से देखें तो गायत्री मंत्र समस्त दृष्टि से समग्र अस्तित्व को समर्पित मंत्र है।

भगवान सूर्य के भी दो रूप हैं। एक स्थूल रूप है, जो धरती के वायुमंडल का निर्माण करता है, प्रकाश, ऊर्जा, ऊष्मा को देने का आधार बनता है

और एक उनका सूक्ष्म रूप भी है, जो प्राणियों का संरक्षण करता है, उनको प्राण-ऊर्जा प्रदत्त करता है और इस संसार में प्राण का प्रवाह उत्पन्न करता है। सूर्य की स्थूल ऊर्जा को हम तक लाने के लिए उसकी किरणें माध्यम बनती हैं तो वहीं उसकी सूक्ष्म ऊर्जा को हम तक लाने के लिए गायत्री मंत्र के शब्द आधार बनते हैं।

शतपथ ब्राह्मण कहता है कि—'गय' का अर्थ है—'प्राण' और 'त्रय' का अर्थ है—'त्राण'। प्राणों का त्राण करने वाली, प्राणों की रक्षा करने वाली शक्ति माँ गायत्री कहलाती हैं। इसलिए शास्त्र कहते हैं—'**गयान् प्राणान् त्रायते सा गायत्री**।' इसी बात को पुराण कुछ दूसरी भाषा में ऐसे कहते हैं कि '**गातारम त्रायते यस्माद् गायत्री तेन गीयते**'— अर्थात जिसका गायन करने से हमें त्राण मिले, वो गायत्री है।

इसीलिए कई साधना ग्रंथों में गायत्री मंत्र को तारक मंत्र कहकर पुकारा गया है। तारक का अर्थ है— तारने वाला, पार कराने वाला। इस भवसागर से, संसाररूपी दुष्कर चक्र से पार जाने के लिए गायत्री मंत्र की शक्ति की आवश्यकता होती है। गायत्री का मंत्र हमारे भीतर प्राणों के प्रवाह को उत्पन्न करता है।

सभी परिचित हैं कि हमारे शरीर के तीन स्तर हैं—स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण। जब गायत्री मंत्र की उपासना से हमारे भीतर प्राणों का प्रवाह उत्पन्न होता है तो यह प्राण ही तीन अलग-अलग शरीरों में तेज, ओज और वर्चस् के रूप में जाना जाता है।

इस प्राण के अभिवर्द्धन का कार्य जिस शक्ति के माध्यम से संपन्न होता है। उस प्राण को प्राप्त करने के लिए हमें अपनी उपासना को भी अनुप्राणित करने की जरूरत होती है। बाहर का जो कर्मकांड है, पूजा-उपासना है—वो हमारी उपासना का कलेवर, शरीर है और जो हमारी उपासना करते समय भावना है, श्रद्धा है और निष्ठा है—वो वस्तुस्थिति में हमारी साधना का प्राण है। कर्मकांड का मूल उद्देश्य तो उस दिशा की ओर इशारा करना है, जिस ओर चलने से साधना के परिणाम निकलकर आते हैं, परंतु साधना की सम्यक विधि को ही उसका प्राण कहकर पुकार सकते हैं।

यदि वो प्राण उस साधना, उपासना में नहीं है तो उसका कोई अर्थ, लाभ नहीं निकलता है। रेलवे का गार्ड झंडी दिखाता है तब गाड़ी चलती है, पर झंडी मात्र इशारा है। गाड़ी चलती तो उसके इंजन से ही है।

वैसे ही गायत्री-साधना का प्राण बाह्य आडंबर में नहीं, भीतर की आध्यात्मिकता में है। उस आध्यात्मिकता में है, जो हमारे ऋषियों में थी, वो आध्यात्मिकता जिसके कारण भारत और भारत की संस्कृति मनुष्य के रूप में देवताओं की खदान हो गई थी, जिसके कारण भारत को विश्वगुरु का स्थान प्राप्त था, वो आध्यात्मिकता जिसके कारण सप्त ऋषियों ने, सभी प्रमुख धर्मों के प्रवर्तकों ने, संतों ने, योगियों ने, तपस्वियों ने, सुधारकों ने, शहीदों ने, गुरुओं ने, भक्तों ने—भारतभूमि को जन्म लेने के लिए, उनके अवतरण के लिए चुना।

उसका कारण यह ही था कि वो आध्यात्मिकता भारत के कण-कण में विद्यमान थी। जो हम गायत्री उपासना करते हैं, उसके प्राण के रूप में वो ही आध्यात्मिकता एक गूढ़ संकेत-संदेश के रूप में विद्यमान है और उसी के नवोन्मेष के लिए हमें प्रयत्न करने की आवश्यकता है। ❑

---

**कुत्रापि खेदः कायस्य जिह्वा कुत्रापि खिद्यते।**
**मनः कुत्रापि तत्त्यक्त्वा पुरुषार्थे स्थितः सुखम्॥**

*—अष्टावक्र गीता, 13/2*

***अर्थात—कहीं शरीर का दुःख है तो कहीं वाणी का दुःख है तो कहीं मन का दुःख है। सुखी वही है, जो आत्मानंद में निमग्न रहता है।***

---

# ज्योति पर्व दीपावली

लक्ष्मी-गणेश का पूजन कर पावन दीप जलाएँ हम।
ज्योति पर्व दीपावली सुंदर, सहोल्लास मनाएँ हम॥
गरिमा है दीपक की अपनी,
दीपक प्रकाश फैलाता है,
ध्यान रहे ज्योतित दीपक ही,
दीपक अन्य जलाता है,
अपना दीपक स्वयं जलाकर, अन्य का दीप जलाएँ हम।
ज्योति पर्व दीपावली सुंदर, सहोल्लास मनाएँ हम॥
श्रद्धा-निष्ठा के बल पर ही,
दीपक अंधकार को हरता,
स्नेह-वर्तिका जलती रहती,
दीपक पथ प्रदर्शित करता,
अपना दीपक बनकर जग में, औरों को राह दिखाएँ हम।
ज्योति पर्व दीपावली सुंदर, सहोल्लास मनाएँ हम॥
कृत्य घिनौने त्यागें सत्वर,
धरती का श्रृंगार करें,
जुआ शराब व्यसन सब तजकर,
मानवता से प्यार करें,
प्रज्ञावतार की प्रबल प्रेरणा, ज्ञान की ज्योति जलाएँ हम।
ज्योति पर्व दीपावली सुंदर, सहोल्लास मनाएँ हम॥
मनमानी को त्याग अहर्निश,
गुरु का चिंतन करते जाएँ,
स्नेह समर्पण के बलबूते,
मंजिल अपनी चलकर पाएँ,
ज्योति अखण्ड जली तम हरने, उसके प्रकाश में आएँ हम।
ज्योति पर्व दीपावली सुंदर, सहोल्लास मनाएँ हम॥

*—विष्णु कुमार शर्मा*

अखण्ड ज्योति
(मासिक)
R.N.I. No. 2162/52

www.awgp.org

प्र. ति. 01-11-2022
Regd. N0. Mathura-025/2021-2023
Licensed to Post without Prepayment
N0. : Agra/WPP-08/2021-2023

गायत्रीतीर्थ,शांतिकुंज-हरिद्वार में केंद्रीय टोली प्रशिक्षण सत्र में कार्यकर्त्ताओं का पुनर्बोधन-प्रशिक्षण

स्वामी, प्रकाशक, मुद्रक– मृत्युंजय शर्मा द्वारा जनजागरण प्रेस, बिरला मंदिर के सामने, जयसिंहपुरा, मथुरा से मुद्रित व अखण्ड ज्योति संस्थान, धीयामंडी, मथुरा–281003 से प्रकाशित। संपादक–डॉ. प्रणव पण्ड्या।
दूरभाष – 0565- 2403940, 2402574, 2412272, 2412273 मोबाइल - 09927086291, 07534812036, 07534812037, 07534812038, 07534812039
ईमेल – akhandjyoti@akhandjyotisansthan.org